सम्भव

जनवरी–जून 2026

उदन्तमार्तण्ड



कर्मवीर

साप्ताहिक पत्र।

हिन्दुस्तान

THE HINDUSTAN

उत्तर-भारत का प्रमुख दैनिक-पत्र

आगामी अधिवेशन पूनामें

हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार, रामलाल आनंद महाविद्यालय

अनुक्रमणिका

संपादकीय

हिंदी पत्रकारिता : चुनौतियों और उपलब्धियों के दो सौ वर्ष : **राकेश कुमार** 1

लेख

वैचारिक पत्रकारिता की राह दिखती कटीली है, पर भविष्य इसी में है : **योगेश नारायण दीक्षित** 3

हिंदी पत्रकारिता और उसकी नैतिकता के सवाल : **अरुण कुमार त्रिपाठी** 5

टीवी और हिंदी पत्रकारिता : बदलते समय में संवाद, समाज और लोकतंत्र : **डॉ. ओमशंकर गुप्ता** 8

भेद खोलेगी बात ही बनाम एआई युग में हिंदी पत्रकारिता : **अखिलेश तिवारी** 10

हिंदी पत्रकारिता पर राजा राममोहन राय का वैचारिक प्रभाव : **डॉ. हरिओम कुमार** 12

पुरोधा संपादकों की प्रयोगधर्मी परंपरा : **डॉ. देवेन्द्र नाथ तिवारी** 14

विज्ञान, कृषि और पर्यावरण की संतुलित साधना ही कसौटी : **डॉ. सीमा भारती** 17

जो पत्रकार एआई से दोस्ती नहीं करेंगे, वे हाशिए पर चले जाएंगे : **रणविजय सिंह** 20

महिला पत्रकारों के निर्भीक काम की रोमांचक कहानी : **डॉ. श्वेता आर्या** 23

भारत में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत 'उदन्त मार्तण्ड' के साथ : **आयुष प्रजापति** 27

'उदन्त मार्तण्ड' में ब्रज और खड़ी बोली की आधुनिक हिंदी : **धनंजय कुमार** 29

शुरुआती हिंदी समाचार पत्रों में भाषायी प्रयोग : **योगेश प्रताप** 31

हिंदी और बांग्ला के बीच सेतु बना हिंदी का पहला दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' : **दिव्या** 33

हिंदी पत्रकारिता का सूर्योदय और शुरुआती संघर्ष : **विष्णु धनगर** 36

शब्दों की जिम्मेदारी और समाज का विवेक : **आस्था त्रिपाठी** 38

भारतीय लोकतंत्र की सूचना धारा बनीं हिंदी समाचार समितियां : **खुशी वशिष्ठ** 41

हिंग्लिश की पटरी पर दौड़ रही हैं हिंदी की वेबसाइट्स : **नंदनी वार्ष्णेय** 43

राष्ट्रीय से जिला संस्करण तक पत्रकारिता का सफर : **उत्कर्ष कुमार** 45

यूट्यूब और पॉडकास्ट के दौर में हिंदी पत्रकारिता की आत्मा की तलाश : **मुन्ना कुमार वर्मा** 48

दोतरफा संचार का दौर लाया सोशल मीडिया : **अभिषेक कुमार** 50

एक दूसरे के पूरक रहे हिंदी और अंग्रेजी के समाचार पत्र : **कृष्णा** 52

निजी पूंजी के प्रवेश से मीडिया एक उद्योग के रूप में उभरा : **शिवांश सक्सेना** 53

समाज में चेतना बढ़ाने की अहम भूमिका : खुशी प्रजापति 55

हिंदी पत्रकारिता की विज्ञापनी यात्रा : मिशन, बाजार और चुनौतियां : **रिशुराज श्रीवास्तव** 57

समय के साथ संपादक की बदलती रही भूमिका : **श्रुति मिश्रा** 59

सम्भव

वर्ष : 20 अंक : 1
पूर्णांक–28
जनवरी–जून 2026
मार्च 2026 में प्रकाशित

संरक्षक मंडल

प्राचार्य
प्रो. राकेश कुमार गुप्ता

प्रभारी
प्रो. राकेश कुमार

संपादक मंडल

संपादक
प्रो. राकेश कुमार
डॉ. अटल तिवारी

छात्र संपादक
अंशिका वर्मा

उप-संपादक
भारती बल

फोटो
अटल तिवारी व इंटरनेट

कवर
हर्षित

संपादकीय पता :
हिंदी, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
रामलाल आनंद महाविद्यालय,
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
बेनितो हुआरेज मार्ग, नई दिल्ली-**110021**
दूरभाष: 011-24112557
ईमेल : sambhavrla@gmail.com

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक
प्रो. राकेश कुमार गुप्ता
द्वारा बेनितो हुआरेज मार्ग
नई दिल्ली-110021 से प्रकाशित
और **यशस्वी प्रिंटर्स,** जी-2/122,
द्वितीय तल, सेक्टर-16,
दिल्ली-110089 से मुद्रित

'सम्भव' में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, उनसे संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय

हिंदी पत्रकारिता : चुनौतियों और उपलब्धियों के दो सौ वर्ष



दिनकर-कर प्रगटत दिनहिं यह प्रकाश अठ याम ।
ऐसो रवि अब उग्यो महि जेहि तेहि सुख को धाम ॥

इन्हीं पंक्तियों से 30 मई 1826 को कलकत्ता से पंडित युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन शुरू किया था, उस दिन हिंदी पत्रकारिता के दिनकर का उदय हुआ था। 'हिंदुस्तानियों के हित के हेतु' साप्ताहिक के रूप में निकलने वाला हिंदी का यह पहला समाचार पत्र ही नहीं था, अपितु वह हिंदी क्षेत्र की सदियों की वैचारिक खामोशी को तोड़ने वाला एक भाषायी विस्फोट था। मात्र डेढ़ वर्ष तक चलने वाले 'उदन्त मार्तण्ड' ने आने वाले समय में हिंदी पत्रकारिता की सुदृढ़ नींव रखी। आज जब हिंदी पत्रकारिता अपनी यात्रा के 200वें वर्ष की दहलीज पर खड़ी है तो पीछे मुड़कर देखने पर संघर्षों की एक लंबी कतार और उपलब्धियों का एक हिमालय नजर आता है। यह यात्रा केवल सूचनाओं की नहीं, बल्कि भारतीय समाज की अंतरात्मा और लोकतांत्रिक मूल्यों के क्रमिक विकास की पूरी गाथा है।

हिंदी पत्रकारिता का उदय उस समय हुआ, जब देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। उस दौर में पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, बल्कि देश सेवा का महान दायित्व था। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कविवचन सुधा' के माध्यम से समाज को झकझोरा तो प्रेमचंद का 'हंस' ब्रिटिश शासन के आंख की किरकिरी बना रहा। मदन मोहन मालवीय ने 'अभ्युदय' के जरिए राष्ट्रवाद को स्वर दिया। सबसे प्रखर उदाहरण गणेश शंकर विद्यार्थी का 'प्रताप' रहा, जिसने कानपुर की धरती से ब्रिटिश हुकूमत की चूलें हिला दीं। 'प्रताप' के पहले अंक यानी 9 नवम्बर 1913 के अग्रलेख में लिखा 'सत्य और न्याय हमारे भीतरी पथप्रदर्शक होंगे और सरकारी कानून बाहरी। साम्प्रदायिक और व्यक्तिगत झगड़ों से 'प्रताप' सदा अलग रहने की कोशिश करेगा। उसका जन्म किसी विशेष सभा, संस्था, व्यक्ति या मत का पालन-पोषण, रक्षा या विरोध करने के लिए नहीं हुआ है, किंतु उसका मत स्वतंत्र-विचार और उसका धर्म सत्य होगा।' उस दौर के पत्रकारों के लिए जेल जाना गौरव की बात थी और फांसी का फंदा आभूषण। उन्होंने सिखाया कि पत्रकारिता का धर्म, सत्ता की चाटुकारिता नहीं, बल्कि जनहित के लिए शहादत है। ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध और भारत की आम जनता के पक्ष में लिखा गया प्रत्येक समाचार भारतीय स्वाधीनता की नींव रख रहा था। उस समय में समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का महत्व इसी बात से आंका जा सकता है कि भगत सिंह (किरती), गांधी (हरिजन, इंडियन ओपिनियन), पंडित जवाहरलाल नेहरू (नवजीवन, कौमी आवाज, नेशनल हेराल्ड), बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर (मूकनायक) आदि अनेक जननायक किसी न किसी समाचार पत्र या पत्रिका के साथ जुड़े रहे।

1947 में ब्रिटिश दासता से मुक्ति के बाद हिंदी पत्रकारिता ने एक नई करवट ली। अब चुनौती मात्र ब्रिटिश शासन के विरोध की नहीं, बल्कि देश के नवनिर्माण की थी। लोकतांत्रिक भारत में प्रेस को चौथा स्तंभ माना गया और हिंदी पत्रों ने इस जिम्मेदारी को बखूबी निभाया। सत्तर और अस्सी के दशक में अज्ञेय, रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी, राजेंद्र माथुर और प्रभाष जोशी जैसे दिग्गजों ने हिंदी पत्रकारिता को भाषायी संस्कार और

वैचारिक गंभीरता दी। 'नवभारत टाइम्स', 'जनसत्ता', 'हिंदुस्तान' और 'दैनिक जागरण' जैसे पत्रों ने गांव की चौपालों से लेकर संसद के गलियारों तक अपनी पैठ बनाई। विशेष बात यह भी है कि ये प्रसिद्ध सम्पादक, साहित्यकार भी रहे। हिंदी के समाचार पत्रों ने सत्ता से सवाल को धर्म की तरह स्वीकार किया। यह वह दौर था जब संपादक का एक लेख सरकारें बदलने और सामाजिक क्रांतियां लाने की ताकत रखता था।

90 के दशक में आर्थिक उदारीकरण के साथ मीडिया का परिदृश्य बदल गया। विदेशी पूंजी और कॉरपोरेट घरानों के प्रवेश ने पत्रकारिता को एक उद्योग बना दिया। यहां से संपादक बनाम प्रबंधक का द्वंद्व शुरू हुआ। विज्ञापनदाताओं के हितों की रक्षा संपादकीय स्वतंत्रता पर हावी होने लगी। समाचारों में गंभीरता का स्थान ग्लैमर, सनसनी और इन्फोटेनमेंट ने ले लिया। इस दौर ने हिंदी पत्रकारिता को आर्थिक रूप से तो समृद्ध किया, लेकिन उसकी नैतिक साख पर कुछ धुंधली परछाइयां भी छोड़ीं। कॉरपोरेट मीडिया ने विज्ञापन और टीआरपी के समीकरणों को साधने के लिए जनपक्षधर पत्रकारिता को तिलांजलि दे दी। कुछ स्वतंत्र पत्रकारों और पत्रिकाओं को छोड़ दें तो हिंदी के अधिकांश टीवी न्यूज चैनलों ने लोकतांत्रिक जनव्यवहारों, तार्किक विचार पद्धति और प्रगतिशील वैश्विक दृष्टि को मुनाफे के बाजार में बेच दिया। इस मीडिया ने फेक न्यूज और छद्म नैरेटिव को पत्रकारिता की प्राथमिक भाषा बना दिया, जिससे मीडिया के प्रति विश्वसनीयता का संकट खड़ा हो गया। वर्तमान में न्यू मीडिया की डिजिटल क्रांति का समय है। मुख्यधारा के मीडिया को आज वेब पोर्टल, यूट्यूब चैनल और सोशल मीडिया ने चुनौती दी है। मीडिया का लोकतांत्रीकरण इसी के कारण सम्भव हो पाया है, पर हर जनमाध्यम की तरह नया मीडिया भी फेक न्यूज, प्रोपेगेंडा, मिसइन्फॉर्मेशन और पोस्ट-ट्रुथ के रोग से ग्रस्त हो चुका है। नए मीडिया में सूचना का अतिरेक है, मगर विश्लेषण का अभाव। आज डाटा पत्रकारिता और एआई जैसे टूल्स ने पत्रकारों का काम आसान तो किया है, लेकिन मानवीय संवेदना और जमीनी हकीकत से उसका जुड़ाव कम हुआ है।

हिंदी पत्रकारिता का भविष्य उज्ज्वल है क्योंकि हिंदी भाषा की पहुंच वैश्विक हो रही है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने इसे सात समंदर पार तक पहुंचाया है, लेकिन भविष्य की सबसे बड़ी चुनौती अपनी साख को बचाए रखना है। जब तक पत्रकारिता का सरोकार हाशिए पर खड़े अंतिम व्यक्ति से रहेगा, तब तक यह जीवंत रहेगी। तकनीक कितनी भी बदल जाए, सच्चाई का कोई विकल्प नहीं हो सकता। यहां हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता की ऐतिहासिक भूमिका को भी रेखांकित किया जाना चाहिए, जिन्होंने उन्नीसवीं सदी से लेकर इक्कीसवीं सदी तक देश के कालचक्र में अपना महत्व दर्ज कराया है। 'कविवचन सुधा', 'हंस', 'चाँद', 'मतवाला', 'धर्मयुग', 'दिनमान', 'नयी कहानी', 'ज्ञानोदय', कथादेश, 'कथन', 'पहल' जैसी अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं ने तमाम राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तनों के दौर में वैकल्पिक समाज व्यवस्था, मूल्य व्यवस्था और उच्च मानव मूल्यों की स्थापना में अपनी महती भूमिका निभाई है।

आज 200 वर्षों के इस ऐतिहासिक मोड़ पर हमें यह स्वीकार करना होगा कि हिंदी पत्रकारिता ने राष्ट्र को दिशा दी है, भाषा को संस्कार दिए हैं और लोकतंत्र को प्रहरी दिया है। भविष्य के पत्रकारों को तकनीक के साथ-साथ उन मूल्यों को भी सहेजना होगा, जो हमें पंडित युगल किशोर शुक्ल और गणेश शंकर विद्यार्थी से विरासत में मिले हैं। अंत में, मैं मात्र यह कहना चाहता हूं कि खबर वह नहीं है जो आप सरकार से या बाजार से सुनकर लिखते हैं। जोनाथन फोस्टर ने कहा था कि यदि एक व्यक्ति यह कहे कि बाहर बारिश हो रही है और दूसरा व्यक्ति यह कहे कि बाहर सूखा पड़ा हुआ है तो दोनों की बातों को अपनी खबर में लिख देना पत्रकारिता नहीं है। ऐसे में अपनी खिड़की खोलकर बाहर झांककर देखना कि सच क्या है? वह पत्रकारिता धर्म और दायित्व है। यदि हम अपनी रीढ़ की हड्डी सीधी रख सकें और देश की कोटि-कोटि आम जनता के प्रति अपने दायित्व का अनुभव करें तभी इन 200 वर्षों का उत्सव सार्थक होगा। यह हमारे लिए अत्यंत गर्व का विषय है कि हिंदी पत्रकारिता के दो सौ वर्षों को समर्पित इस विशेषांक के साथ हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग की अपनी पत्रिका 'सम्भव' अपने प्रकाशन के बीसवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। हिंदी पत्रकारिता के दो सौ वर्षों की महान गाथा को समर्पित हमारा यह अंक इस उम्मीद से बना है कि सत्य, न्याय, विश्वसनीयता, जनपक्षधरता और लोकतंत्र की मशाल जो दो सौ वर्ष पूर्व जली थी वह आने वाले दशकों, सदियों में बुझेगी नहीं बल्कि और प्रकाशमान होगी। हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग इस विशेषांक के प्रकाशन के लिए दूरदर्शी, कर्मठ और कर्मयोगी प्राचार्य प्रो. राकेश कुमार गुप्ता जी का आभार व्यक्त करता है। इस विशेषांक के सम्पादन और योजना के लिए मैं अपने साथी डॉ. अटल तिवारी जी को साधुवाद देता हूं, जो निरंतर 'सम्भव' के प्रकाशन को अपने श्रम, प्रतिभा और ज्ञान से सम्भव बनाते आ रहे हैं। इस अंक को समृद्ध बनाने में सहयोग के लिए डॉ. विशाल शर्मा को धन्यवाद। साथ ही इस अंक की छात्र संपादक अंशिका वर्मा, उप-संपादक भारती बल और सभी लेखकों को हिंदी पत्रकारिता के दो सौ वर्षों के इस उत्सव को अपने लेखों से सफल बनाने के लिए बहुत-बहुत बधाई।

प्रो. राकेश कुमार
संयोजक, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार

वैचारिक पत्रकारिता की राह दिखती कटीली है, पर भविष्य इसी में है



योगेश नारायण दीक्षित
स्थानीय संपादक
अमर उजाला, प्रयागराज

आज जब हिंदी पत्रकारिता ने 200 साल का समय पूरा कर लिया है, तब चुनौतियों पर चर्चा के साथ आत्ममंथन का वक्त भी है। यह मंथन इसलिए जरूरी है कि स्वतंत्रता के पवित्र विचार पर खड़ी हुई हिंदी पत्रकारिता के सामने बड़ी दुविधा खड़ी हो गई है। एक तो समाचार विस्फोट या समाचार स्रोत के अति लोकतंत्रीकरण ने मीडिया के सामने विश्वास का बड़ा संकट खड़ा कर दिया है। दूसरी दुविधा यह समझने की है कि पाठक की नजर में विचारों वाली पत्रकारिता वास्तव में है क्या? इसलिए जब आप दिमाग पर जोर दिए बिना बात को समझने की कोशिश करेंगे तो उम्मीद की चमकती किरण आपको नजर आएगी।

बात देश में हिंदी पत्रकारिता की हो रही है तो 30 मई 1826 को प्रकाशित 'उदन्त मार्तण्ड' और पंडित युगल किशोर शुक्ल का स्मरण जरूरी है। श्री शुक्ल ने हिंदी में साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन के समय ही इसका स्पष्ट उद्देश्य बता दिया था। हिंदी बोलने वालों को उन्हीं की भाषा में जागरूक करना जिससे उनको रूढ़ियों से बाहर निकाला जा सके। यह इसलिए करना था क्योंकि अखबार पढ़ने वालों में उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करनी थी। मेरा मत है, हिंदी के पहले साप्ताहिक पत्र ने बड़े करीने से अपनी भाषा में विचार पत्रकारिता की नींव रख दी थी। विचार की पत्रकारिता का भाव समझें। आपने खूब पढ़ा और सुना होगा कि विचार मरता नहीं। विचार उस धूल में दबे बीज की तरह है, जो उचित हवा और पानी पाकर पल्लवित होता है। फूल से खुशबू बिखेरता है। फलों से जीवन में रंग भर देता है। इसीलिए विचार की पत्रकारिता का भविष्य उज्ज्वल है। एक विचार असीमित संभावनाओं को जन्म देता है। यही खूबी तो विचार पत्रकारिता की है। सवाल इसके बाद खड़ा होता है। विचार पत्रकारिता है क्या? इसे पारिभाषित कैसे करें? इसको किस पैमाने पर परखें? जब एआई जैसी तकनीक और सूचना विस्फोट ने प्रिंट और इलेक्ट्रानिक पत्रकारिता के सामनेअूड्ड अस्तित्व का संकट खड़ा कर दिया है, तब विचार पत्रकारिता की ओर लौटने जैसी बात स्वीकार कौन करेगा? दरअसल पत्रकारिता में विचार (इंटलेक्ट) क्या है, इसे समझने में पत्रकारों और समझाने में मीडिया लेखकों के लिखे को अंतिम मान लिया गया। इसके बाद हाल यह हुआ कि विचार का मतलब प्रिंट मीडिया में संपादकीय पृष्ठ पर प्रकाशित आलेख तक सीमित हो गया। इसके बाद की स्थिति हास्यास्पद होती चली गई। निर्भीक लेखन को विचार का नाम दे दिया गया। फिर कहा गया पत्रकार तटस्थ होकर वैसा ही लिखें तो विचार की पत्रकारिता बची रहेगी। बाद में समाचार चैनल और अब यूट्यूब पर होने वाले विमर्श को भी विचार का नाम दिया जा रहा है। दरअसल, कोई विचार स्वयं सर्वकालिक नहीं होता। कोई विचार हर बार क्रांतिकारी नहीं होता। विचार समय के साथ उपजने वाला आधार बिंदु है, जिस पर चलकर समाज कुछ हासिल करने का प्रयत्न करता है। समाज जिस विचार पर आगे बढ़ता है अथवा उससे लक्ष्य हासिल करता है, उस विचार के इर्द-गिर्द का पत्रकारीय लेखन सफल माना जाता है। मतलब जो विचार आमजन की आत्मा से उत्पन्न होता अथवा झकझोरता है, वह पत्र-पत्रिकाओं के लिए सबसे मुफीद विषय होना चाहिए। लेखन उस विचार पर बढ़ रहे समाज को चेता सकता है, जगा सकता है और सबसे बड़ी बात, विचार के हर पहलू से रूबरू करा सकता है। इसको और स्पष्ट करने के लिए हमें पत्रकारिता के इतिहास की ओर पलट कर देखना होगा। इसके लिए सबसे मुफीद है भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रकारिता पर मनन करना और समालोचना की दृष्टि से देखना। उन्होंने तीन पत्र निकाले- 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन' और 'बाला बोधिनी'। उन्होंने तीनों के उद्देश्य अलग-अलग रखे। कविवचन सुधा साहित्यिक पत्र था, जिसका उद्देश्य सामाजिक था। 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (बाद में चंद्रिका) ने हिंदी के नए लेखकों को प्लेटफार्म दिया। इसका उद्देश्य देश के सामने की चुनौतियों को साहित्य के माध्यम से सामने लाना था। महिलाओं को देश की चिंतनधारा से जोड़ने के लिए और गुलामी की सोच से बाहर निकालने के

लिए बाला बोधिनी पत्रिका निकाली। इतने स्पष्ट उदेश्य से निकाला गया पत्र और पत्रिका ही विचार पत्रकारिता की नींव रखती है। प्रखर संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर विचार को हिंदी पत्रकारिता का प्राण कहते थे। उन्होंने करीब 100 साल पहले वृंदावन के सम्मेलन में कहा था कि आगे चलकर पत्र अच्छी छपाई और चित्रों से सुंदर तो दिखेंगे, पर प्राणहीन होंगे। यहां प्राण से उनका आशय था वैचारिक पत्रकारिता। आज सच भी यही है। पहले रीडरशिप, व्यूज, लाइक्स के रूप में बाजार का अंदाजा लगाया जा रहा है, फिर उसके लिए उपयुक्त लेखक तलाशा जाता है और फिर लेख तैयार कराया जाता है। लेख का प्रोडक्ट हो जाना वैचारिक पत्रकारिता के लिए गंभीर चुनौती बनता जा रहा है। विचार से बदलाव की अवधारणा की जगह मार्केट के अनुकूल व्यूज ने न्यूज का स्वरूप बदल दिया है। इसी का नतीजा है कि पत्रकारिता की विश्वसनीयता, साख और भरोसा खतरे में दिखने लगा है।

चलिए आगे की सोचते हैं...पत्रकारिता में विचार और वैचारिक पत्रकारिता का दुखड़ा इतिहास के हवाले से रोना हमें उचित नहीं लगता। इसलिए बस संदर्भ भर आपसे साझा किया और गांधीयुगीन उद्देश्य से भरपूर पत्र-पत्रिकाओं के हवाले से आपको आज की पत्रकारिता से तुलना के भारी भरकम विषय से दूर रखा है। दरअसल, हमारा उद्देश्य युवा लेखकों को यह बताना है कि विचार को हथियार बनाकर लिखोगे तो लंबे चलोगे। मार्केट के हिसाब से लिखोगे तो उठोगे, गिरोगे और फिर रेंगते रहोगे। विचार की पत्रकारिता के लिए किताब और समाज को एक साथ पढ़ना पड़ता है। मार्केट की पत्रकारिता के लिए गूगल करना या चैटबॉट के सहारे चलकर लंगड़ा बनना पड़ता है। एक विचार दूसरे विचार को जन्म देता है और लेखन के नए दरवाजे खोलता है। यह मानसिक योग की तरह होता है जो दिमाग की सोचने समझने की क्षमता बढ़ाता है।

मार्केट के हिसाब से लेखन दिमाग को कुंद करता है। इसलिए मार्केट के हिसाब से उपजे पत्रकारों को हमेशा पत्रकारिता (और एक हद तक खतरे में दिखाई देती है) और विचारों पर खड़े हुए पत्रकार को हर चुनौती अवसर के रूप में दिखाई देती है। उदाहरण के लिए गूगल करेंगे तो सूर्य पूर्व में निकलता नजर आएगा (मतलब पृथ्वी स्थिर और सूर्य चलायमान है) और विचार करेंगे तो जिस दिशा में सूरज निकलता है, वह पूर्व होती है (मतलब सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसका चक्कर लगाती है)।

थोड़ा कठिन है...पर फायदा ज्यादा है। समाज से संवाद का सबसे सशक्त माध्यम पत्रकारिता है। इसलिए सबसे ज्यादा चुनौतियां भी पत्रकारिता के सामने आती हैं। इसलिए पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं ने संवाद के सबसे विश्वसनीय माध्यम पत्रकारिता में नवाचार को अंगीकार करना भी शुरू कर दिया है। दुनिया के प्रतिष्ठित संस्थानों में पिछले कुछ वर्षों में जितने भी शोध संवाद, समाचार और विचार के प्रेषण को लेकर हुए हैं, उनमें सबसे ज्यादा रिसर्च पेपर पत्रकारिता में नवाचार और नवोन्मेष पर सामने आए हैं।

ज्यादातर शोध का निष्कर्ष है कि सूचना विस्फोट के दौर में समाज को सही समाचार पहुंचाने के लिए पत्रकारिता में नवोन्मेष और नवाचार बहुत जरूरी है। इसलिए विचार की पत्रकारिता को आज व्यापकता से समझने और समझाने की जरूरत है। विचार आप का मत नहीं है। विचार किसी समूह की इच्छा नहीं है। विचार किसी की सोच से उपजी धारणा नहीं है। इसलिए ऐसा लेखन विचार की पत्रकारिता नहीं है। विचार तो अध्ययन, शोध और समाज की आत्मा को समग्रता से उत्पन्न वह ऊर्जा है जो कलम से होकर जब अखबार में उतरती है तो उसकी गर्माहट पाठकों को झकझोरती है। यह काम कठिन है। थोड़ा ज्यादा कठिन है। लेकिन, इसके फायदे अनंत हैं। आपके लिए नए दरवाजे खुलते हैं। विचार पर काम करने वाला पत्रकार शोध की खबरें निकालता है। डाटा का विश्लेषण करता है और उससे समाज को दिशा देने वाला इशारा करता है।

और अंत में...

पत्रकारिता के नवांकुरों को एक छोटी सी सलाह वैचारिक पत्रकारिता को लेकर है। शोध, डाटा, एक्सपरीमेंट, एक्सपर्ट पत्रकार जैसे जो शब्द आप सुनते हैं और वैसा बनना चाहते हैं, वे सब विचार पत्रकारिता से उपजे और उसी पर खड़े हैं। आपके लिए अवसर है कि आप भी थोड़ा पढ़कर, थोड़ा समाज को समझकर और थोड़ा तकनीक को समाहित कर ऐसे विचारवान पत्रकार बन सकते हैं, जिनके अखबारों में लिखे लेख किताबों में बदल जाते हैं और बाद में इतिहास की धरोहर बन जाते हैं। हिंदी पत्रकारिता के 200 की उपलब्धियां बहुत हैं, इसलिए भविष्य सुनहरा है।

हिंदी पत्रकारिता और उसकी नैतिकता के सवाल



अरुण कुमार त्रिपाठी
प्रोफेसर ऑफ प्रैक्टिस, जीसीडीएस, आईटीएम यूनिवर्सिटी, ग्वालियर

अस्सी के दशक में जब हम लोग पत्रकारिता में आए तो पत्रकारिता की राजनीतिक नैतिकता तरल थी, लेकिन सामाजिक नैतिकता एक हद तक ठोस थी। भ्रष्टाचार मिटे और अगर सरकारें असहनीय हो जाएं तो उन्हें बदल दिया जाना चाहिए, ऐसी दृष्टि पत्रकारिता में तेजी से तैयार हो रही थी। इस दृष्टि पर सवाल उठाने वाले उस समय भी थे। वे सवाल कभी-कभी यथास्थितिवादी उठाते थे तो कभी-कभी परिवर्तन चाहने वाले वामपंथी। इंडियन एक्सप्रेस समूह में काम करते हुए प्रबंधन और पत्रकारों की दृष्टि तात्कालिक सरकार के भ्रष्टाचार को उजागर करना और उसे लगातार कमजोर करते हुए अगले चुनाव में पलट देने वाली थी। इस बात का विरोध एक तरफ संस्थान में काम करने वाले गैर-पत्रकारीय कर्मचारी करते थे और हम पत्रकारों से कहते थे कि आप लोग बेवजह कांग्रेस सरकार के पीछे लगे रहते हैं।

दूसरी ओर ट्रेड यूनियन संगठन के ऐसे लोग थे, जो कहते थे कि यह मैनेजमेंट तो दक्षिणपंथी है और कर्मचारियों को वेजबोर्ड देने और बोनस देने में आनाकानी करता है। इसलिए इसका विरोध किया जाना चाहिए। इसलिए तमाम वामपंथी संगठन उस सोच का भी विरोध करते थे, जिसके तहत तत्कालीन सरकार का विरोध किया जाता था। इसके बावजूद पत्रकारिता की सामाजिक नैतिकता इतनी जरूर थी कि दंगा भड़काने वाली खबरें नहीं छापी जाएंगी। अगर कहीं पर दंगा हो रहा है तो समुदाय का नाम लिखने के बजाय एक समुदाय लिखा जाएगा। जातिगत विद्वेष बढ़ाने वाले समाचार भी नहीं छापे जाएंगे। दूसरी बड़ी मान्यता यह थी कि आंदोलनों को अखबार में जगह दी जाएगी। चाहे वह पर्यावरण का आंदोलन हो, किसानों का आंदोलन हो या ट्रेड यूनियन का आंदोलन हो। एक तरह से दावा किया जाता था कि अखबार आंदोलन के गर्भ से निकला है। यह दावा नहीं किया जा सकता कि उस समय के सभी हिंदी अखबार इसी नैतिक मानदंड पर काम करते थे, लेकिन कानपुर से निकलने वाले एक अखबार विशेष को छोड़कर बाकी अखबार सामाजिक समाचारों में एक संतुलन कायम करते थे।

हालांकि सामाजिक नैतिकता का झंडाबरदार होने का दावा करने वाले एक अखबार पर उस नैतिकता को तोड़ने के गंभीर आरोप लगे। विशेषकर सती प्रथा के समर्थन का संपादकीय छपने और उसके बाद धार्मिक पाखंड को बढ़ाने और सांप्रदायिकता के वैचारिक पक्ष को प्रोत्साहित करने के भी आरोप लगे। उसके चलते तमाम प्रगतिशील लेखकों ने अखबार का बायकाट शुरू कर दिया। ध्यान देने की बात है कि उन्हीं लोगों ने अस्सी के दशक के मध्य में उस अखबार को हाथों-हाथ लिया था क्योंकि उस अखबार ने न सिर्फ भाषा के स्तर पर नए मानदंड कायम किए थे, बल्कि जयप्रकाश नारायण के आंदोलन से प्रेरित समूह के नेतृत्व में निकलने वाले उस अखबार ने अतिवामपंथ से लेकर अतिदक्षिणपंथ तक के हर आंदोलन को अपने पन्नों पर जगह दी। बड़ी बात यह थी कि अगर उस अखबार ने पंजाब समस्या पर राष्ट्रवादी रुख अपनाया तो तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए सिख विरोधी नरसंहार में उन राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों को बेनकाब किया जो इस घिनौने कृत्य में शामिल थे। उस कारण वह अखबार अल्पसंख्यक तबके का प्रिय पत्र बन गया।

राजनीतिक तौर पर हिंदी पत्रकारिता विभाजित थी, इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता, लेकिन उस विभाजन पर व्यावसायिकता उतनी हावी नहीं थी जितनी राजनीतिक सोच हावी थी। इक्कीसवीं सदी की तरह तब पत्रकारिता इतनी व्यावसायिक नहीं हुई थी जितनी आज हो गई है। शायद आपातकाल की 'अग्निपरीक्षा' से निकली उस पत्रकारिता ने कुछ लोकतांत्रिक मूल्यों को अपने हृदय के करीब स्थान दे रखा था। तभी चाहे दिल्ली में एकदम पड़ोस से निकलने वाले दो अखबार हों या बिड़ला जी के संस्थान से निकलने वाला

अखबार हो उनमें कुछ गरिमा बची थी। गुणवत्ता की बात जाने दीजिए, लेकिन पत्रकारीय नैतिकता का एक आग्रह था। बहादुर शाह जफर मार्ग के दो हिंदी अखबारों का नेतृत्व तो मध्य प्रदेश के एक ही शहर से आए दो दिग्गज संपादक कर रहे थे और उनकी विचार दृष्टि भी राजनीतिक रूप से भिन्न थी, लेकिन जहां तक लोकतांत्रिक मूल्यों की बात है तो व्यापक रूप से वे उस दायरे में रह कर पत्रकारिता कर रहे थे। उधर बंबई से निकलने वाली 'धर्मयुग', कलकत्ता से निकलने वाली 'रविवार' और दिल्ली से निकलने वाली 'दिनमान' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' ने भी अपने स्तर को कायम रखा था। आप कह सकते हैं कि उनके मूल्य व्यापक तौर पर लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्षता वाले ही थे। पत्रकारिता सत्ता की ठकुरसोहाती इतनी निर्लज्जता से नहीं करती थी, जितनी निर्लज्जता से बाद के दौर में करने लगी। बल्कि कहीं भी अगर सत्ता और जनता के बीच टकराव की स्थिति हो तो पत्रकारिता जनता के साथ खड़ी होती थी। माना भी जाता था कि जिसकी कहीं सुनवाई नहीं होती उसकी सुनवाई पत्रकारिता में होगी। तब पत्रकारिता में छपने वाली खबरों का असर भी होता था और उस पर अदालतें भी संज्ञान लेती थीं। कई बार लगता था कि सत्ता में शक्तिशाली उपस्थिति के बावजूद पार्टी विशेष पत्रकारिता को अपनी आलोचना करने से रोक नहीं पाती थी। या यूं कहा जाए कि एक सीमा से नीचे गिरकर रोकती नहीं थी।



लेकिन पत्रकारिता में नैतिक पतन की शुरुआत तब हुई जब नब्बे के दशक में तीन बड़ी घटनाएं एक साथ हुईं। वे ऐसी घटनाएं थीं जिन्होंने भारतीय राजनीति और भारतीय समाज को बुनियादी रूप से बदलने और झकझोरने की कोशिश की। एक तरफ राम मंदिर आंदोलन था तो दूसरी ओर मंडल आयोग की रपट थी तो तीसरी ओर वैश्वीकरण की अंतरराष्ट्रीय प्रक्रिया थी। इन तीनों ने पत्रकारिता और विशेषकर हिंदी पत्रकारिता को झकझोर दिया। इन प्रक्रियाओं की लहर में पत्रकारिता ने अपने को संतुलित रखने की बड़ी कोशिशें कीं, लेकिन बहुत कम पत्र ऐसे थे जो अपने को संभाल पाए। कोई जातिवादी हो गया, कोई सांप्रदायिक तो कोई पूरी तरह से पूंजीवादी।

पूंजी और प्रौद्योगिकी के प्रचंड दबाव के चलते बहुत कुछ बदलने लगा। ट्रेड यूनियनें खत्म होने लगीं। वेज बोर्ड की नौकरियां कांट्रैक्ट की नौकरियों में बदलने लगीं। पत्रकार अपने संस्थानों में जितने सुरक्षित होते थे उतने ही असुरक्षित होने लगे। मैनेजमेंट यानी विज्ञापन और सर्कुलेशन की टीम पत्रकारिता की टीम को निर्देशित करने लगी। यह सही है कि उस बीच कुछ संपादकों और पत्र समूहों ने उदारीकरण और वैश्वीकरण के विरुद्ध एकजुटता दिखाई, अभियान चलाया और अपने पत्रों में उसका विरोध भी किया। लेकिन वैश्वीकरण की लहर प्रचंड थी और पत्र समूह भी आखिरकार पूंजीपतियों या नए उभरते व्यापारियों के थे और उन्हें अब पत्रकारिता से समाज सेवा के बजाय लाभ कमाना था। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिंदी पत्रकारिता के नैतिक मूल्य राजनीतिक ध्रुवीकरण और पैंतरेबाजी में जितने बचे खुचे थे, उन्हें उदारीकरण और बाजारीकरण ने डुबो दिया। इसी बीच 'पेड न्यूज' का चलन भी शुरू हुआ और लिफाफा पत्रकारिता भी। पेड न्यूज यानी चुनावों के मौके पर धन लेकर खबरें छापने का सिलसिला। खबरें विज्ञापन के फार्मेट में होती थीं, लेकिन लगती नहीं थीं।

हिंदी पत्रकारों को नए उभरते क्षत्रपों ने प्रदेश की राजधानियों में बड़े-बड़े सरकारी आवास आवंटित किए और जो अधिक दे सकते थे उन्होंने प्लाट तक दिए।

एक ओर कुछ वरिष्ठ पत्रकार मिशन की पत्रकारिता के शव को कंधों पर लेकर घूम रहे थे, दूसरी ओर प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में धूम-धड़ाके के साथ बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्तनों का वर्णन ऑस्ट्रेलिया के मीडिया विशेषज्ञ रॉबिन जेफ्री ने 'इंडियाज न्यूज पेपर्स रिवोल्यूशन' और भारत की मीडिया विशेषज्ञ शेवंती नैनन ने अपनी पुस्तक 'हेडलाइन्स फॉम हार्टलैंड' में किया है। गुणवत्ता से अधिक मात्र का महत्व बढ़ता गया। इन दोनों पुस्तकों में शेवंती नैनन की पुस्तक तो हिंदी पर फोकस करती है, जबकि जेफ्री की पुस्तक भारत की विविध भाषाओं की पत्रकारिता पर केंद्रित है। नैनन की पुस्तक एक हद तक सामग्री की भी चर्चा करती है और जेफ्री की पुस्तक जुगेन हैबरमास के पब्लिक स्फीयर और राष्ट्रवाद के नए स्वरूप पर भी थोड़ी बात करती है, लेकिन पत्रकारीय नैतिकता में हो रहे परिवर्तन की चर्चा बहुत कम है। यह चर्चा भी नहीं होती कि पत्रकारीय संस्थानों में आ रही सेवा शर्तों के परिवर्तन का पत्रकारिता पर क्या असर पड़ रहा है? कैसे संपादक मैनेजर बन रहे हैं और कैसे-कैसे मैनेजर संपादक बन रहे हैं? पिछले तीस सालों की सबसे बड़ी त्रासदी यही रही है कि संपादक नाम की संस्था का क्षरण होना। संपादक सीईओ होने लगे और सीईओ संपादक होने लगे।

इस बीच इलेक्ट्रानिक चैनलों ने हिंदी पत्रकारिता की नैतिकता को काफी कुछ बदल दिया। एक दौर में चैनलों ने अपने मानक कायम किए और फील्ड रिपोर्टिंग से लेकर उन पर होने वाली बहसों ने भी पत्रकारिता को गरिमा प्रदान की, लेकिन एक ओर व्यावसायिक चैनलों ने टीआरपी के कारण सामाजिक ताने-बाने को नष्ट करने की ठानी तो दूसरी ओर जिन चैनलों में पत्रकारीय मानकों का पालन होता था उन पर बदलती सत्ताओं का दबाव बढ़ता गया। मिशन और प्रोफेशन की बहसें धीरे-धीरे बेमानी हो गईं। शुरू में व्यावसायिक नैतिकता की बात होती थी, लेकिन धीरे-धीरे व्यावसायिक नैतिकता भी निर्लज्ज किस्म के पक्षपात में बदल गई। वह पक्षपात जनता के विरुद्ध लोकतांत्रिक मूल्यों के विरुद्ध और विपक्ष के विरुद्ध होने लगा। सत्तारूढ़ दलों और कॉरपोरेट का अद्भुत गठजोड़ बना और 2014 के बाद उसने पत्रकारिता को राज्य की एक संस्था का ही रूप दे दिया। अब पत्रकारिता सत्ता के लिए समर्पित होने लगी। जो संस्थान इसके लिए नहीं तैयार थे उन पर दबाव बनाया गया और उन्हें या तो अनुकूल पूंजीपतियों ने खरीद लिया या फिर दबाव डालकर उन्हें शांत कर दिया गया।

अंत में 1925 में वृंदावन में संपादकों के सम्मेलन में व्यक्त किए गए बाबूराव विष्णु पराड़कर के वे विचार मसीहाई साबित हुए कि 'आने वाले समय में अखबार ज्यादा पन्नों पर रंगीन होकर निकलेंगे। संपादकों की तनख्वाहें ऊंची होंगी, लेकिन उनको वह आजादी नहीं होगी जो आज है।' पत्रकारीय नैतिकता बाजार की नैतिकता हो चली है और उस पर भी राजनीतिक पक्षपात का तड़का लग चुका है। रही सही कसर कोरोना ने पूरी कर दी और इस दौरान सत्ता और पूंजी ने मरते हुए प्रिंट मीडिया को बचाने और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को गति प्रदान करने के इरादे से उसकी मदद की, लेकिन स्वतंत्रता छीन ली। आज समाचारों की नई पारिस्थितिकी के कारण मुख्यधारा की हिंदी पत्रकारिता में नैतिकता का अकाल है।

पत्रकारिता की आचार संहिता



टीवी और हिंदी पत्रकारिता : बदलते समय में संवाद, समाज और लोकतंत्र



डॉ. ओमशंकर गुप्ता
सहायक आचार्य
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
छत्रपति शाहूजी महाराज विद्यालय, कानपुर

भारत ने 15 सितंबर 1959 को न...न करते हुए टेलीविजन के लिए हां की। प्रायोगिक तौर पर शुरुआत के बाद से भारत में टेलीविजन ने सरपट दौड़ना शुरु किया। न्यूज हो या व्यूज, सत्यम शिवम सुंदरम के नारे के साथ शुरू हुआ लोक प्रसारक टेलीविजन वर्तमान में भी उसी कल्पना के साथ चल रहा है। 1980 के दशक में दूरदर्शन के माधयम से भारत में टेलीविजन की हिंदी और अंग्रेजी पत्रकारिता की शुरुआत हुई। पहले यह पूर्ण रूप से सरकारी नियंत्रण में था। हिंदी के समाचार बुलेटिन सीमित समय और औपचारिक शैली में प्रस्तुत किए जाते थे। पहली टीवी न्यूज एंकर प्रतिमा पुरी, शम्मी नारंग, जेवी रमण और सलमा सुल्तान, गरिमा, स्पष्टता और संतुलन के साथ मानक हिंदी में समाचार पढ़ते थे। टीवी ने हिंदी पत्रकारिता की दुनिया में क्रांति ला दी। पहले समाचार पढ़े जाते थे, लेकिन अब समाचार दिखाई भी देने लगे।

कई धार्मिक और सामाजिक टीवी सीरियल्स की अपार लोकप्रियता के बाद समाचारों से जुड़े उत्साही पत्रकारों और समाचार उद्योग से जुड़े लोगों ने दूरदर्शन और उसके मेट्रो चैनल्स पर अपने समाचार आधारित कार्यक्रम भी प्रायोगिक तौर पर शुरू किए। इनमें एनडीटीवी का द वर्ल्ड दिस वीक, नलिनी सिंह का आंखों देखी और इंडिया टूडे समूह का कैप्सूल सुरेंद्र प्रताप सिंह की आवाज के साथ आज तक काफी लोकप्रिय हुए। इनमें से सुरेंद्र प्रताप सिंह की आम जन की हिंदी की प्रस्तुति के चलते आज तक कार्यक्रम काफी लोकप्रिय हुआ। यह सिलसिला वर्ष 2000 तक चलता रहा। 1995 में प्रसारण पर सरकारी एकाधिकार के खिलाफ आए सुप्रीम फैसले और उदारीकरण की बयार तेज होने से निजी टीवी चैनल्स के लिए राहें आसान हुईं। नतीजा यह हुआ कि सन 1999 और उसके बाद के सालों में पहले जी न्यूज (1999), फिर आज तक (2000) और बाद में एनडीटीवी इंडिया (2003) ने समाचारों पर आधारित 24 घंटे के अपने खुद के चैनल ही खोल दिए। न्यूज चैनल्स इसके बाद भी खुलते रहे। हिंदी पत्रकारिता भारतीय लोकतंत्र का समूल भले न हो, लेकिन रीढ़ जरूर मानी जाती है। यह केवल सूचना देने का माध्यम नहीं बल्कि सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक पहचान और जन सरोकारों की अभिव्यक्ति का सशक्त मंच भी है। टेलीविजन खास तौर पर निजी न्यूज चैनलों के आगमन के बाद हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप, प्रभाव और दायरा व्यापक रूप से तेजी से बदला। टेलीविजन की तकनीकी ताकत से खबरें अधिक प्रभावी, त्वरित और जनमानस से जुड़ती चली गईं। आज तक, एनडीटीवी इंडिया, जी न्यूज, एबीपी न्यूज आदि जैसे चौनल हिंदी पत्रकारिता के प्रमुख स्तंभ बन चुके हैं। टेलीविजन ने समाचार को केवल पढ़ने का नहीं, देखने और महसूस करने का अनुभव बना दिया। लाइव रिपोर्टिंग, ब्रेकिंग न्यूज और विजुअल स्टोरी टेलिंग ने खबरों को अधिाक जीवंत बना दिया। टेलीविजन हिंदी पत्रकारिता ने आम जनता को सशक्त बनाया है। दूरदराज के गांवों में भी लोग टीवी के माध्यम से देश-दुनिया की खबरें जानने लगे हैं। भ्रष्टाचार, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तीकरण, किसानों की समस्याएं और शिक्षा जैसे मुद्दे मुख्य धारा की बहस का हिस्सा बने हैं। टीवी की दुनिया ने हिंदी समाचारों के क्षेत्र में नया व्याकरण गढ़ने, नए शब्दों का निर्माण करने के

साथ भावनाओं की अभिव्यक्ति में भी नवोन्मेष किया है। टेलीविजन पर होने वाली बहसों ने सरकारों को जवाबदेह बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्टिंग ऑपरेशन, जांच रिपोर्टिंग और पैनल चर्चाओं के माध्यम से सत्ता पर सवाल उठाए जाते हैं। हालांकि, यह भी सच है कि कई बार टीआरपी की होड़ में सनसनीखेज खबरों को प्राथमिकता दी जाती है, जिससे पत्रकारिता का मूल उद्देश्य दांव पर लगता दिखाई देता है।

भाषा के स्तर की बात करें तो आलोचना के लिए कह सकते हैं कि टीवी ने हिंदी को 'हिंग्लिश' बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। लेकिन सच यह भी है कि हिंदी और हिंदी पत्रकारिता को वैश्विक फलक पर स्थापित करने में हिंदी के टीवी चैनलों ने कोई कसर नहीं छोड़ी। टेलीविजन ने हिंदी को आधुनिक, सरल और आमजन की भाषा बनाया है। पहले जहां पत्रकारिता में शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग होता था, वहीं आज टीवी पत्रकारिता के चलते बोलचाल की हिंदी प्रमुख हो गई है। इससे खबरें अधिक सहज और समझने योग्य बनी हैं। आलोचकों का मानना है कि टीवी पत्रकारिता में भाषा का स्तर गिरा है और कई बार शुद्धता की जगह नाटकीयता हावी हो जाती है। फिर भी, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि टीवी ने हिंदी को राष्ट्रीय संवाद की भाषा के रूप में मजबूत ही किया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के युग में हिंदी पत्रकारिता का विस्तार और तेज हुआ है। यूटड्यूब चैनल, डिजिटल न्यूज पोर्टल और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने पारंपरिक टीवी पत्रकारिता को बड़ी चुनौती दी है। आज आमजन व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और एक्स के जरिए खबरें प्राप्त करते हैं। इससे सूचना का प्रवाह तेज हुआ है, लेकिन फेक न्यूज और भ्रामक जानकारी की समस्या भी तेजी से बढ़ी है। ऐसे में टेलीविजन पत्रकारिता की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है कि वह विश्वसनीय और तथ्य आधारित रिपोर्टिंग करे। हिंदी को हिंग्लिश बनाने से बचे। हिंदी पत्रकारिता का वाहक बने। खबरों में निष्पक्षता रखे। जज न बने। हिंदी टेलीविजन पत्रकारिता ने आम आदमी को अपनी आवाज उठाने का मंच दिया है। जनहित के मुद्दों पर बहस, चुनाव कवरेज और सामाजिक मुद्दों की चर्चा के माधयम से यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत करती है। हालांकि, इसके लिए आवश्यक है कि पत्रकारिता निष्पक्ष, तथ्यात्मक और जिम्मेदार बनी रहे। खबर परोसे, विचार भी दिखाए लेकिन विचारधारा का वाहक न बने। उन उपेक्षित क्षेत्रों जैसे–शिक्षा, कृषि, मूल्य और संवेदनाओं पर भी अपना ध्यान दे, जिन्हें वास्तव में टीवी समाचारों में शामिल करने की जरूरत है। सबसे बड़ी बात कि गेटकीपिंग के सिद्धांत का सख्ती से पालन करे ताकि टीवी की हिंदी पत्रकारिता पर लांछन न लगे, दर्शक और श्रोता का भरोसा न टूटे। टीआरपी जरूरी है। रेवेन्यू जरूरी है, लेकिन उससे अधिक जरूरी है सत्य और तथ्य।

टेलीविजन में हिंदी पत्रकारिता का भविष्य डिजिटल और इंटरएक्टिव मीडिया से जुड़ा है। आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस, डाटा जर्नलिज्म और मल्टीमीडिया स्टोरी टेलिंग पत्रकारिता को नया रूप दे रहे हैं। लेकिन मूल मूल्य–सत्य, निष्पक्षता और जनहित हमेशा केंद्र में रहने चाहिए। तभी टीवी की हिंदी पत्रकारिता जनहित की, देश हित की पत्रकारिता बनी रह सकती है। यही वर्तमान की जरूरत है।



भेद खोलेगी बात ही बनाम एआई युग में हिंदी पत्रकारिता



अखिलेश तिवारी
चीफ रिपोर्टर
दैनिक जागरण, कानपुर

विज्ञान और तकनीक ने मनुष्यों को हर युग में आकर्षित किया और इसे अपनाने के लिए प्रेरित। जब हमने पहली बार गोल पहिया बनाया था तो शायद ही यह सोचा होगा कि इसका प्रयोग घोड़ों के साथ रथ में किया जाना है या हजारों साल बाद हवाई जहाज की उड़ान का अनिवार्य हिस्सा होंगे। इसलिए जब बात एआई के दौर में पत्रकारिता की होती है तो हमें इसके दूसरे छोर पर खड़े होकर देखना होगा कि एआई क्या है और पत्रकारिता के साथ इसका क्या संबंध है। प्रश्न दर प्रश्न से गुजरते हुए हम पाते हैं कि पत्रकारिता मूल तत्व है और एआई उसका सहयोगी या सहायक है। यह एक टूल है, जो पहले पत्रकारों की पेन और बाद में टाइपराइटर से होते हुए कंप्यूटर और लैपटाप से मोबाइल फोन तक पहुंचा है। लेकिन एआई इतना सामान्य टूल भी नहीं है। इसे आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस की संज्ञा मिली है तो सबसे पहले इसकी बुद्धिमत्ता और इसके साथ जुड़े विश्लेषण पर विचार करना होगा।

बुद्धिमत्ता का निकट संबंध मनुष्यों से है। प्रागैतिहासिक काल में भी गोल पहिया और नुकीले पत्थर या भाले बनाने के लिए प्रेरित करने वाला तत्व बुद्धिमत्ता ही रहा है। हजारों-हजार साल में अपने बौद्धिक सामर्थ्य के बूते पर मनुष्य ने चंद्रमा और मंगल तक की यात्राओं को सहज और साकार किया है। मनुष्य की इसी बौद्धिक क्षमता, कार्यप्रणाली को समझ कर कंप्यूटर वैज्ञानिकों ने कार्य और निर्णय क्षमता व शक्ति की पूरी प्रक्रिया की डाटा मैपिंग कर डाली है। इसी की मदद से उन्होंने कंप्यूटर को मनुष्य की तरह गणना करना और परिणाम प्राप्त करना सिखा दिया है। ठीक वैसे ही जैसे प्राइमरी स्कूल में शिक्षकों ने हमें अक्षर जोड़कर वाक्य लिखना सिखाया है। तो जैसे हमने लिखना सीखा है अब वैसे ही एआई भी तथ्यों को जोड़कर लेखन करने लगा है। तथ्य के साथ कथ्य यानी एआई ने तथ्य को जोड़कर कथ्य प्रस्तुत करना सीख लिया है, लेकिन तथ्य जुटाने में उसकी सीमाएं हैं। वह इंटरनेट पर मौजूद सामग्री के डाटा पर निर्भर है। यानी जो कुछ इंटरनेट पर है एआई उस तथ्य के आधार पर तो लेखन कर सकता है, लेकिन जो इंटरनेट पर नहीं है, उसे बताने में असमर्थ है। जबकि पत्रकारिता की सर्वाधिक महत्ता वह बताने में है जो अभी-अभी घटित हुआ है या हो रहा है और जिसे इंटरनेट का हिस्सा बनना है।

ऐसे में सवाल यह है कि पत्रकारिता में एआई की भूमिका क्या है? इसका जवाब हमें पत्रकारिता के छात्र, इंटर्न जर्नलिस्ट और वरिष्ठ पत्रकार के काम में अंतर से मिलने वाला है। किसी घटना या तथ्य की जानकारी देने के दौरान उसके संदर्भ भी महत्वपूर्ण होते हैं। जब वरिष्ठ या अनुभवी पत्रकार किसी तथ्य के बारे में रिपोर्ट तैयार करता है तो वह उसके उन संदर्भों को भी शामिल करता है, जो पाठक का ज्ञानवर्धन करने वाले और उसके अंर्तज्ञान को बढ़ाने वाले होते हैं। यह वह अपने अनुभव व पूर्व ज्ञान संपदा के आधार पर करता है। यही काम एआई भी करने वाला है। तो युवा पत्रकारों के लिए एआई एक सहायक टूल है जो उसे डाटा जुटाने, विश्लेषण करने और संदर्भ समाहित करने में मददगार है। शेयर बाजार के आंकड़े, खेल के स्कोर और मौसम की खबरों में इसकी प्रासंगिकता बढ़ी है। पहले अंग्रेजी के अंतरराष्ट्रीय समाचारों को हिंदी में अनुवाद करने में घंटों लगते थे। आज न्यूरल मशीन ट्रांसलेशन के माध्यम से द न्यूयार्क टाइम्स या रॉयटर्स की खबरें तुरंत मानक हिंदी में उपलब्ध हो रही हैं। पत्रकारों के लिए इंटरव्यू रिकॉर्ड करना और उसे टाइप करना एक श्रम साध्य कार्य था। अब एआई टूल्स पलक झपकते ही ऑडियो को हिंदी टेक्स्ट में बदल देते हैं। इसकी मदद से अब विशाल डाटासेट को खंगालकर किसी विशेष तहसील या गांव की समस्याओं (जैसे-बारिश का पैटर्न या फसल बीमा) पर डाटा-आधारित रिपोर्टिंग करना आसान हो गया है। जटिल सरकारी आंकड़ों को ग्राफ और इन्फोग्राफिक्स के जरिए हिंदी पाठकों को समझाना अब आसान हो गया है। इस सबके बावजूद एआई के साथ

पत्रकारिता की चुनौतियां बनी हुई हैं। एआई की मदद से फर्जी वीडियो और समाचार गढ़े जा रहे हैं, जो भ्रमित करने के लिए काफी हैं। डीफेक समाचारों की वजह से विवाद और हंगामा भी हो चुका है। ऐसे में तथ्यों की सटीक परख का दायित्व मशीन या एआई को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह प्राप्त डाटा और मशीन लर्निंग पर आधारित सूचनाएं ही प्रस्तुत करता है।

इसके उदाहरण के रूप में ग्रोक एआई को लिया जा सकता है जो पुष्ट सूचनाओं के बजाय अपुष्ट या मजाक-व्यंग्य और दुर्भावना में कही गई बातों को आधार बनाकर सूचना देने में संकोच नहीं करता। इसलिए बड़ी तेजी के साथ वह अप्रासंगिक भी हो गया। इससे कहा जा सकता है कि पत्रकारिता में तथ्य का पुष्ट होना अनिवार्य है। मशीन के स्तर पर फिलहाल यह संभव नहीं है, क्योंकि एआई पूरी तरह से इंटरनेट पर आधारित सूचनाओं पर आश्रित है। ऐसे में एआई केवल मनुष्यों की निगरानी में ही बेहतर काम कर सकता है और वही कर सकता है जो सामान्य तौर पर उसे सिखाया जा सकता है। पत्रकारिता में संपादन करने के स्थापित नियम और मानक हैं। भाषा प्रयोग और वर्तनी निश्चित है तो एआई इन त्रुटियों को समझकर ठीक कर सकता है। अगर किसी एआई मॉडल का डाटा ही पूर्वाग्रह से भरा हुआ हो या किसी विशेष लक्ष्य को लेकर संयोजित किया गया हो तो आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस के परिणाम भी पूर्वाग्रह आधारित होंगे, जो पत्रकारिता की कसौटी पर खरे नहीं उतरेंगे। इसलिए किसी एआई टूल का प्रयोग करते समय पत्रकार को हमेशा सजग रहना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि तकनीक का प्रयोग सामाजिक या राजनीतिक भेदभाव को बढ़ावा देने के लिए न किया जाए।

हिंदी पत्रकारिता का भविष्य तकनीक और संवेदना के संतुलन पर टिका है। एआई सूचनाएं दे सकता है, आंकड़े जुटा सकता है और अनुवाद कर सकता है, लेकिन वह जमीन की गंध और जनता की चीख को महसूस नहीं कर सकता। एक पत्रकार का साहस, उसकी नैतिकता और समाज के प्रति उसकी जवाबदेही ही वह अंतिम सीमा है, जहां एआई कभी नहीं पहुंच पाएगा। पत्रकारिता के टूल नए होंगे, लेकिन पत्रकारिता सदैव सम्मानित रहेगी। हिंदी के प्रख्यात कवि शमशेर बहादुर सिंह ने कहा है-बात बोलेगी हम नहीं, भेद खोलेगी बात ही।



हिंदी पत्रकारिता पर राजा राममोहन राय का वैचारिक प्रभाव



डॉ. हरिओम कुमार
सहायक आचार्य
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास केवल समाचारों के प्रकाशन का इतिहास नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज के बौद्धिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विकास की गाथा भी है। इस परंपरा में अनेक ऐसे चिंतक और सुधारक हुए हैं, जिनका प्रत्यक्ष लेखन भले ही हिंदी में न रहा हो, पर जिनके विचारों ने हिंदी पत्रकारिता की दिशा और दृष्टि को गहराई से प्रभावित किया। ऐसे ही अग्रदूतों में राजा राममोहन राय का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता, समाज सुधार आंदोलन का जनक और भारतीय पत्रकारिता का प्रारंभिक प्रेरणा स्रोत माना जाता है। भारतीय समाज उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में गहरे अंधविश्वासों, सामाजिक कुरीतियों और औपनिवेशिक दमन से जकड़ा हुआ था। ऐसे समय में राजा राममोहन राय ने सामाजिक सुधार, शिक्षा और पत्रकारिता को जनजागरण का माध्यम बनाया। हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने पत्रकारिता को केवल समाचार देने का साधन नहीं माना बल्कि इसे समाज सुधार और स्वतंत्र चेतना जगाने का हथियार बनाया। उन्होंने 1821 में बंगला साप्ताहिक 'संवाद कौमुदी' तथा 1822 में फारसी साप्ताहिक 'मिरात-उल-अखबार' का प्रकाशन आरंभ किया। इन पत्रों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक कुरीतियों की आलोचना, शिक्षा के प्रसार, धार्मिक सुधार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की वकालत की। उन्होंने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य धार्मिक सुधार और सामाजिक जागृति था। यही सुधारवादी चेतना आगे चलकर पत्रकारिता के माध्यम से व्यापक जनसमुदाय तक पहुंची। इस प्रकार हिंदी पत्रकारिता के लिए वैचारिक आधार तैयार हुआ।

हिंदी पत्रकारिता के वैचारिक अधिष्ठान के निर्माण में राजा राममोहन राय की भूमिका अतुलनीय है। उन्होंने पत्रकारिता को सूचना के संकुचित दायरे से निकालकर संवाद और सुधार के व्यापक फलक पर स्थापित किया।

पत्रकारिता का दार्शनिक आधार : तर्कवाद और मानवतावाद : राजा राममोहन राय के विचारों का केंद्र बिंदु तर्क था। हिंदी पत्रकारिता पर उनका सबसे बड़ा वैचारिक प्रभाव यह रहा कि उन्होंने लेखन को धार्मिक अंधविश्वासों से मुक्त कर उसे तर्क की कसौटी पर कसना सिखाया।

रूढ़ियों का खंडन : राय से पहले भारत में जो भी लिखित साहित्य था, वह मुख्यतः धार्मिक या दरबारी था। राय ने पहली बार पत्रकारिता के माध्यम से सती प्रथा, बहुविवाह और जातिवाद जैसी सामाजिक बुराइयों पर प्रहार किया।

मानवतावादी दृष्टिकोण : उनका मानना था कि पत्रकारिता का अंतिम लक्ष्य मानव कल्याण होना चाहिए। यही वह विचार था जिसे आगे चलकर भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के हिंदी पत्रकारों ने अपना मूल मंत्र बनाया।

बहुभाषी पत्रकारिता और हिंदी का समावेश : राजा राममोहन राय ने यह समझ लिया था कि भारत जैसे विशाल देश में यदि कोई विचार क्रांति लानी है तो उसे क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से ही संभव बनाया जा सकता है।

बंगदूत (1829) : यह पत्र हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में एक मील का पत्थर है। बंगदूत एक अनूठा प्रयोग था, जो एक साथ चार भाषाओं (बांग्ला, हिंदी, फारसी और अंग्रेजी) में निकलता था। इसके माध्यम से राय ने हिंदी को एक वैचारिक भाषा के रूप में मान्यता दी।

हिंदी को माध्यम बनाना : उस दौर में हिंदी मुख्य रूप से बोलियों में विभक्त थी। राय ने इसे गंभीर विमर्श की भाषा बनाने का साहस दिखाया। उनके इस प्रयास ने ही भविष्य में 'उदन्त मार्तंड' जैसे पूर्णतः हिंदी पत्रों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

प्रेस की स्वतंत्रता का सिद्धांत : हिंदी पत्रकारिता आज जिस निर्भीकता के लिए जानी जाती है, उसका बीज राजा राममोहन राय ने ही बोया था। 1823 में जब ब्रिटिश सरकार ने एडम एक्ट (लाइसेंसिंग विनियमन) के जरिए प्रेस पर प्रतिबंध लगाया, तो राय ने इसके विरोध में अपने फारसी अखबार 'मिरात-उल-अखबार' का प्रकाशन बंद कर दिया।

विरोध का वैचारिक तरीका : उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता को नागरिक अधिकार माना। उन्होंने तर्क दिया कि एक स्वतंत्र

प्रेस सरकार को उसकी गलतियों से अवगत कराती है, जिससे अंततः शासन ही सुदृढ़ होता है।

प्रभाव : उनका यह बलिदान और कानूनी संघर्ष भविष्य के हिंदी पत्रकारों के लिए एक आदर्श बना। तिलक, गणेश शंकर विद्यार्थी और माखनलाल चतुर्वेदी की निर्भीक पत्रकारिता के पीछे राय की वही वैचारिक दृढ़ता थी।

सामाजिक सुधार और पत्रकारिता का अंतर्संबंध : राजा राममोहन राय ने पत्रकारिता को सोशल एक्टिविज्म का पर्याय बना दिया। हिंदी पत्रकारिता ने उनसे यह सीखा कि समाचार पत्र केवल घटनाओं का विवरण नहीं हैं बल्कि वह समाज को बदलने का औजार है।

सती प्रथा के विरुद्ध अभियान : उनके पत्रों ने सती प्रथा के खिलाफ जो जनमत तैयार किया, उसी का परिणाम 1829 का निषेध कानून था।

स्त्री शिक्षा और अधिकार : राय के विचारों से प्रेरित होकर बाद में हिंदी के समाचार पत्रों (जैसे–बालाबोधिनी) ने स्त्री शिक्षा के मुद्दे को प्रमुखता से उठाया। पत्रकारिता को समाज के सबसे कमजोर वर्ग की आवाज बनाने का श्रेय राय को ही जाता है।

राष्ट्रवादी चेतना का बीजारोपण : यद्यपि राय के समय में स्वतंत्रता की मांग प्रखर नहीं हुई थी, लेकिन स्वशासन और अधिकारों की बात उन्होंने शुरू कर दी थी।

अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण : राय पहले ऐसे पत्रकार थे, जिन्होंने भारतीय समस्याओं को वैश्विक संदर्भ में देखा। वह आयरलैंड की स्वतंत्रता या फ्रांस की क्रांति की खबरों को अपने समाचार पत्रों में प्रमुखता देते थे।

हिंदी पत्रकारिता पर असर : इससे हिंदी पत्रकारिता में विश्व–बोध पैदा हुआ। हिंदी के पत्रकारों ने वैश्विक राजनीति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय दासता को समझना शुरू किया।

भाषा और शैली का परिमार्जन : राजा राममोहन राय ने पत्रकारिता के लिए एक ऐसी भाषा का समर्थन किया, जो बोझिल न हो और सीधे जनता से संवाद कर सके। उन्होंने गद्य के विकास पर जोर दिया।

गद्य का विकास : हिंदी पत्रकारिता के प्रारंभिक दौर में गद्य अपनी शैशवावस्था में था। राय के लेखों की तार्किकता ने हिंदी गद्य को एक सुव्यवस्थित ढांचा प्रदान करने में मदद की। उन्होंने दिखाया कि कैसे क्लिष्ट शब्दों के बिना भी गंभीर दार्शनिक और राजनीतिक बातें की जा सकती हैं।

हिंदी पत्रकारिता के पुरोधाओं पर प्रभाव : राय के विचारों का प्रभाव सीधे तौर पर उनके बाद आने वाली पीढ़ियों पर पड़ा।

पंडित युगल किशोर शुक्ल : 'उदन्त मार्तंड' के संपादन में वही सामाजिक सरोकार दिखे, जो राजा राममोहन राय के थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र : भारतेंदु की पत्रकारिता में जो राष्ट्रीयता और समाज सुधार का मिश्रण है, वह राजा राममोहन राय के ब्रह्मवादी और सुधारवादी विचारों का ही विस्तार था।

महावीर प्रसाद द्विवेदी : भाषा की शुद्धता और पत्रकारिता की नैतिकता के जो मानक द्विवेदी जी ने स्थापित किए, उनके मूल में राजा राममोहन राय की सत्यनिष्ठा ही थी।

इन सभी मूल्यों को हिंदी पत्रकारिता ने आत्मसात किया, इन्हीं सिद्धांतों ने आगे चलकर हिंदी पत्रकारिता को दिशा प्रदान की। हिंदी के आरंभिक पत्रकारों ने समाज–सुधार को पत्रकारिता का मुख्य लक्ष्य माना, जो राजा राममोहन राय की वैचारिक प्रेरणा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज के इस दौर में, जब पत्रकारिता के मूल्यों पर संकट के बादल हैं, राजा राममोहन राय के विचार और अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं। उन्होंने जिस स्वतंत्र और निष्पक्ष प्रेस का सपना देखा था, वह आज भी हिंदी पत्रकारों के लिए एक ध्रुव तारे की तरह मार्गदर्शक है। राजा राममोहन राय वास्तव में हिंदी पत्रकारिता के वह वैचारिक पितामह हैं, जिनके बिना भारतीय जनतंत्र के चौथे स्तंभ की कल्पना असंभव है। राजा राममोहन राय ने पत्रकारिता को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। उनके विचारों की प्रतिध्वनि हिंदी पत्रकारिता में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। हिंदी पत्रकारिता ने राजा राममोहन राय की वैचारिक विरासत को आत्मसात कर समाज–सुधार, राष्ट्रीय चेतना और बौद्धिक जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार, राजा राममोहन राय और हिंदी पत्रकारिता का संबंध अप्रत्यक्ष होते हुए भी अत्यंत सशक्त और ऐतिहासिक है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि हिंदी पत्रकारिता पर राजा राम मोहन राय का प्रभाव केवल तकनीकी या भाषायी नहीं था बल्कि वह मुख्य रूप से वैचारिक था। उन्होंने भारतीय प्रेस को रीढ़ की हड्डी प्रदान की। उन्होंने सिखाया कि पत्रकारिता का धर्म सत्ता की चापलूसी करना नहीं बल्कि जनहित में सत्य का अन्वेषण करना है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राजा राममोहन राय हिंदी पत्रकारिता के प्रत्यक्ष निर्माता नहीं थे, किंतु वह इसके वैचारिक शिल्पकार अवश्य थे। उनके सामाजिक सुधार, तर्कवादी चिंतन, मानवतावाद और प्रेस की स्वतंत्रता के विचारों ने हिंदी पत्रकारिता को दिशा और उद्देश्य प्रदान किया।

पुरोधा संपादकों की प्रयोगधर्मी परंपरा



डॉ. देवेन्द्र नाथ तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
रामलाल आनंद महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत की सांस्कृतिक आत्मा केवल पूजा-पाठ, अनुष्ठानों और लोककलाओं तक सीमित नहीं है। वह मूलत: विचार, विमर्श और संवाद की दीर्घ परंपरा से निर्मित होती है। यही सतत संवाद जब आधुनिक छापेखाने और समाचार पत्रों की दुनिया में प्रवेश करता है तो हिंदी पत्रकारिता के रूप में एक नए भारतबोध को आकार देता है। 'उदन्त मार्तंड' से शुरू हुई यह यात्रा दरअसल भाषा, समाज और राष्ट्र-तीनों की संयुक्त खोज है, जिसे हिंदी के पुरोधा संपादकों ने अपने प्रयोगों और जोखिमों से आगे बढ़ाया। इन संपादकों ने पत्रकारिता को केवल सूचना प्रसारण का माध्यम न रहकर स्वतंत्रता, स्वाभिमान, समानता और मानवीय न्याय के सक्रिय विमर्श का औजार बनाया।

पंडित युगल किशोर शुक्ल का 'उदन्त मार्तंड' इस यात्रा का आरंभिक प्रकाश स्तंभ है। 30 मई 1826 को कोलकाता से निकले इस साप्ताहिक ने पहली बार पूरी तरह देवनागरी लिपि में हिंदी अखबार की परिकल्पना को साकार किया। यह न हिंदी क्षेत्र के केंद्र में था न ही इसके पास संगठित पाठक वर्ग या पूंजी थी, फिर भी शुक्ल जी ने खड़ी बोली और ब्रज के मिश्रित रूप में ऐसी भाषा गढ़ी, जो आम हिंदी भाषी को अपने करीब लगे। यही उनका बड़ा प्रयोग था। न तो संस्कृतनिष्ठ दुरूहता, न ही दरबारी भाषा, बल्कि लोक जीवन से छनकर आई सहज, संवादधर्मी हिंदी। सीमित संसाधनों और औपनिवेशिक उपेक्षा के बीच 'उदन्त मार्तंड' अधिक दिन नहीं चल सका, पर इसने यह साबित कर दिया कि हिंदी में भी सार्वजनिक संवाद की एक आधुनिक मंच संरचना संभव है। इस प्रारंभिक बीज ने आगे के सम्पादकों को यह विश्वास दिया कि भारतीयता की आवाज अपनी भाषा में ही सबसे प्रामाणिक रूप से व्यक्त हो सकती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इस बीज को सांस्कृतिक नवजागरण का विराट वृक्ष बनाने की कोशिश की। 'कवि वचन सुधा' और बाद में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' के माध्यम से उन्होंने साहित्यिक पत्र को ही राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक आलोचना का मंच बनाया। उनके यहां कविता, नाटक, व्यंग्य, निबंध और समाचार, सब एक ही वैचारिक धारा में बहते हैं। यह उनका बड़ा पत्रकारीय प्रयोग था कि साहित्य और पत्रकारिता के बीच की दीवार को गिरा दिया जाए, ताकि पाठक केवल सूचना ही नहीं, संवेदना और चिंतन से भी रूपांतरित हो। स्वदेशी के आग्रह, स्त्री-पुरुष समानता, सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार और अंग्रेजी शासन की आलोचना-यह सब बातें उन्होंने उस समय की हिंदी पत्रकारिता के लिए अत्यंत साहसी ढंग से उठाईं। छपाई की आवृत्ति बढ़ाकर पत्र को मासिक से पाक्षिक और साप्ताहिक तक ले जाना भी इस बात का संकेत था कि वे पाठक समाज को निरंतर विचार संवाद में व्यस्त रखना चाहते थे।

भारतेंदु के बाद आधुनिक हिंदी गद्य और सुविचारित सामाजिक विमर्श को संगठित रूप देने का बड़ा दायित्व महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संभाला। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन (1903-1920) के दौरान उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को भाषा संशोधन, तर्कशीलता और समाज सुधार से जोड़ा। द्विवेदी जी का प्रयोग यह था कि पत्रिका केवल साहित्यिक रुचि की पूर्ति न करे बल्कि पाठक के भीतर नागरिक बोध, वैज्ञानिक दृष्टि और सुधारवादी चेतना को मजबूत करे। सरल, संयत खड़ी बोली को मानक के रूप में प्रतिष्ठित कर उन्होंने भाषा को न केवल सुगठित किया बल्कि भविष्य की पत्रकारिता के लिए शैली मानदंड भी बनाए। कृषक, स्त्री, श्रमिक, अस्पृश्यता, शिक्षा और राष्ट्रीय आंदोलन जैसे विषयों पर उनके संपादकीय और लेख यह दिखाते हैं कि पत्रकारिता किस तरह समाज के 'मार्गदर्शक बौद्धिक' की भूमिका निभा सकती है। 'द्विवेदी युग' दरअसल इसी वैचारिक और पत्रकारीय अनुशासन का दूसरा नाम है। गणेश शंकर विद्यार्थी ने इस वैचारिक अनुशासन को जुझारू जन आंदोलन से जोड़

दिया। 'प्रयाग' और 'सरस्वती' जैसे मंचों से सीखकर उन्होंने कानपुर से 'प्रताप' नामक साप्ताहिक (बाद में दैनिक) निकाला और उसे किसानों, मजदूरों, शोषितों और क्रांतिकारियों की आवाज बना दिया। विद्यार्थी जी का सबसे बड़ा प्रयोग था–'एक्टिविस्ट जर्नलिज्म'। वह केवल रिपोर्टर या संपादक नहीं रहे बल्कि सीधे आंदोलनों के नेतृत्व, दमन के खिलाफ मोर्चाबंदी और सांप्रदायिक दंगों में शांति स्थापना तक में उतर आए। 'प्रताप' के पन्नों पर न केवल अंग्रेजी शासन की नीतियों की तीखी आलोचना दिखती है बल्कि स्थानीय शोषण, जमींदारी अन्याय और साम्प्रदायिक उन्माद के विरुद्ध खुला प्रतिरोध भी मिलता है। लेखन, सत्य अन्वेषण और जीवन तीनों एक साथ दांव पर लगाने की यह परंपरा भारतीय पत्रकारिता में बिरली है।



छत्तीसगढ़ में पंडित माधावराव सप्रे ने एक अलग तरह का प्रयोग किया। 'छत्तीसगढ़ मित्र' जैसी पत्रिका के माध्यम से उन्होंने क्षेत्रीय समाज को हिंदी की व्यापक धारा से जोड़ा और साथ ही हिंदी में मौलिक कहानी लेखन का बीजारोपण किया। 'एक टोकरी भर मिट्टी' जैसी कहानी हो या आर्थिक–सामाजिक विषयों पर उनके लेख, सप्रे जी ने यह दिखाया कि पत्रकारिता केवल राष्ट्रीय राजनीति के आस–पास घूमने वाला विमर्श नहीं बल्कि स्थानीय जीवन, शिक्षा, स्त्री शिक्षा, स्वदेशी उद्योग, ग्राम समस्याएं और औपनिवेशिक नीतियों के प्रभाव जैसे बहुस्तरीय प्रश्नों से जुड़ने का साधन है। विज्ञान और अर्थशास्त्र की हिंदी शब्दावली विकसित करने, विज्ञान शब्दकोश जैसे कार्यों में उनकी भागीदारी यह बताती है कि वह पत्रकारिता को ज्ञान मीमांसा का साझा मंच बनाना चाहते थे। यह भी एक बुनियादी प्रयोग था–पत्रकारिता के माध्यम से ज्ञान लोक का लोकतांत्रीकरण। माखनलाल चतुर्वेदी ने पत्रकारीय भाषा में कविता की लय, आदर्शवाद और क्रांतिकारी तेजस्विता का अद्भुत संगम किया। 'कर्मवीर', 'प्रभा' आदि पत्रों के संपादन के दौरान उनका प्रयास रहा कि गांव, किसान, स्वदेशी उद्योग, राष्ट्रीय आंदोलन और नैतिक संघर्ष जैसे विषयों पर ऐसी भाषा में लिखा जाए, जो जनमानस को भीतर तक झकझोर दे। उनके संपादकीय प्रायः किसी कवितात्मक घोषणापत्र की तरह लगते हैं–उदात्त भावनाएं, तीखी नैतिक दृष्टि और स्पष्ट राजनीतिक पक्षधरता। यह उनका महत्वपूर्ण प्रयोग था कि पत्रकारिता को नीरस तटस्थता से निकालकर 'समर्पित रचनात्मकता' का रूप दिया जाए। रिपोर्ट, लेख, कविता और संपादकीय–इन सभी के बीच उन्होंने भाषा शैली की दीवारों को तोड़ा और दिखाया कि विचार संघर्ष के समय में विधाओं की सीमाएं गौण हो जाती हैं। इन सभी परंपराओं का उच्चतम संगठन और भाषिक परिष्कार बाबूराव विष्णु पराड़कर के यहां दिखाई देता है। काशी से प्रकाशित 'आज' दैनिक के दीर्घकालीन संपादक के रूप में पराड़कर जी ने आधुनिक हिंदी पत्रकारिता की भाषा, शब्दावली और मूल्य दृष्टि को नई दिशा दी। उन्होंने एक ओर तो राष्ट्रवादी संघर्ष, क्रांतिकारी गतिविधियों और साम्राज्यवादी दमन के खिलाफ अखबार को हथियार की तरह इस्तेमाल किया, दूसरी ओर हिंदी गद्य को अत्यंत प्रभावी, संक्षिप्त और सौन्दर्यपूर्ण बनाया। 'रणभेरी' जैसे गुप्त पत्र का संपादन, प्रतिबंधित काल में वैकल्पिक प्रकाशन और जेल यात्राएं बताती हैं कि वह पत्रकारिता को पूर्णकालिक संघर्ष धर्म मानते थे। पराड़कर जी का सबसे मौलिक प्रयोग हिंदी में नए शब्दों, मुहावरों और प्रशासनिक–राजनीतिक शब्दावली की रचना है। 'राष्ट्रपति', 'मुद्रास्फ़ीति', 'वायुमंडल', 'अंतरराष्ट्रीय' इत्यादि शब्दों ने आगे चलकर पूरे राष्ट्र की सार्वजनिक भाषा को आकार दिया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि आधुनिक जीवन के बुनियादी

सवाल (राजनीति, अर्थव्यवस्था, विज्ञान, कूटनीति) सब कुछ हिंदी में उतनी ही सटीकता से व्यक्त किया जा सकता है, जितना किसी पश्चिमी भाषा में। उनकी संपादकीय शैली, छोटे वाक्य, तीखा व्यंग्य, साफ तर्क और नैतिक निष्कर्ष बाद की पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय मानक बन गई।

इन पुरोधा संपादकों के प्रयोगों को यदि एक सूत्र में बांधा जाए तो साफ होता है कि उनका लक्ष्य 'भारतीयता' के एक व्यापक, समावेशी और जागरूक रूप का निर्माण था। युगल किशोर शुक्ल का भाषायी साहस, भारतेंदु का सांस्कृतिक, राजनीतिक नवजागरण, द्विवेदी का सुधारवादी बौद्धिक अनुशासन, विद्यार्थी का संघर्षशील जनपक्ष, सप्रे का ज्ञान लोक और क्षेत्रीय चेतना का समन्वय, माखनलाल चतुर्वेदी का कवित्वपूर्ण क्रांतिकारित्व और पराड़कर का भाषिक वैचारिक परिष्कार–सब मिलकर हिंदी पत्रकारिता को राष्ट्र निर्माण की एक सशक्त प्रक्रिया में बदल देते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि इन सभी संपादकों के यहां 'भारत' कोई स्थिर भू–सीमा नहीं बल्कि निरंतर रूपांतरित होती सांस्कृतिक–राजनीतिक अनुभूति है। उनकी पत्रकारिता में गांव–कस्बों का जीवन, लोकभाषा की लय, धार्मिक बहुलता, स्त्री–पुरुष समानता, स्वदेशी अर्थनीति, शिक्षा और सामाजिक न्याय–सब एक विशद भारतबोध के तत्व हैं। औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध से लेकर स्वतंत्रता पश्चात लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना तक, हिंदी पत्रकारिता ने इन्हीं प्रयोगधर्मी संपादकों के माध्यम से भारतीय समाज को यह सिखाया कि असहमति, आलोचना और स्वप्न–तीनों मिलकर लोकतांत्रिक चेतना को जन्म देते हैं। डिजिटल युग में जब पत्रकारिता पर बाजार, सत्ता और त्वरित उपभोग के दबाव बढ़ते जा रहे हैं, तब युगल किशोर शुक्ल से लेकर पराड़कर तक की यह परंपरा हमें स्मरण दिलाती है कि सच्ची पत्रकारिता वही है जो भाषा को जनता से जोड़ते हुए सत्ता से सवाल करने का साहस रखे, जो 'समाचार' को केवल तथ्य संग्रह नहीं बल्कि समाज की नैतिक दिशा की खोज माने। इन पुरोधा संपादकों के पत्रकारीय प्रयोग आज भी यह प्रेरणा देते हैं कि हिंदी पत्रकारिता का असली मिशन भारत की बहुल, मानवीय और न्यायपूर्ण आत्मा को शब्द देना है–चाहे मंच मुद्रित कागज का हो या डिजिटल स्क्रीन का।



विज्ञान, कृषि और पर्यावरण की संतुलित साधना ही कसौटी



डॉ. सीमा भारती
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
रामलाल आनंद महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास लगभग 200 वर्षों की अवधि पूरी कर चुका है। यह जनचेतना, सामाजिक बदलाव और लोकतांत्रिक संवाद की मजबूत परंपरा के साथ-साथ जुड़ी रही है। अपने विभिन्न काल खंडों में हिंदी पत्रकारिता तमाम साहित्यिक राजनीतिक एवं आर्थिक परिदृश्य को सबके सामने सटीकता के साथ रखती आई है। विज्ञान पत्रकारिता को लेकर भी हिंदी के पत्रकारों ने कम ही सही पर रुचि दिखाई। आज जब दुनिया अभूतपूर्व तकनीकी बदलावों, जलवायु संकट, कृषि अस्थिरता तथा मिट्टी की गुणवत्ता के क्षरण के दौर से गुजर रही है, तब हिंदी पत्रकारिता के सामने विज्ञान, कृषि और पर्यावरण जैसे विषयों को गंभीरता, सटीकता और जिम्मेदारी के साथ प्रस्तुत करने की चुनौती पहले से कहीं अधिक बड़ी हो गई है। विज्ञान अपने स्वभाव से विश्लेषणात्मक, प्रयोगधर्मी और तथ्यों पर आधारित होता है। यह मानव स्वभाव के अनुरूप उत्सुकता और जिज्ञासा के खंभों पर टिका है, लेकिन हिंदी मीडिया में विज्ञान पत्रकारिता अभी भी सीमित दायरे में सिमटी दिखाई देती है। आज भी हिंदी के पत्रकार स्थापित मानकों से आगे बढ़कर सोचते-लिखते दिखाई नहीं देते। समाचारों में अंतरिक्ष अभियानों, नई दवाओं या तकनीकी खोजों का उल्लेख तो मिलता है, परंतु उनके वैज्ञानिक आधार, सामाजिक प्रभाव और नैतिक प्रश्नों पर विस्तृत चर्चा कम देखने को मिलती है। इतना ही नहीं किसी भी खबर की वैज्ञानिकता को सटीक शब्दों में समझा पाने का अभाव भी प्राय: दिखता है। आम तौर पर हम देखते हैं कि विज्ञान की खबर को फ्रंट पेज पर जगह नहीं मिलती, लेकिन अगर वही खबर पॉलिटिकल मतलब से महत्वपूर्ण हो तो उसे जरूर जगह मिल जाती है। हालांकि कम महत्वपूर्ण खबरें भी अगर अच्छी प्रस्तुति से दिखाई दें तो जनता उसे पढ़ना चाहेगी, परंतु रूखी प्रस्तुति और बेजान भाषा, विज्ञान को आम आदमी से दूर कर देती है। उदाहरण देखिए कि जब भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन किसी नए मिशन की घोषणा करता है तो अधिकांश हिंदी अखबार उसकी सफलता या असफलता पर केंद्रित रहते हैं, लेकिन मिशन के वैज्ञानिक सिद्धांत, अनुसंधान की प्रक्रिया या उससे जुड़ी दीर्घकालिक संभावनाओं पर गहराई से विश्लेषण अपेक्षाकृत कम मिलता है। इसका नतीजा यह होता है कि पाठक उक्त मिशन की वैज्ञानिकता को पूरी तरह से समझ ही नहीं पाते।

विज्ञान पत्रकारिता की सबसे बड़ी चुनौती है-जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं को सरल, बोधगम्य और रोचक भाषा में प्रस्तुत करना। वह भी बिना तथ्यों से समझौता किए। कई बार अनुवाद आधारित पत्रकारिता में तकनीकी शब्दों का शाब्दिक अनुवाद पाठकों को भ्रमित कर देता है। विज्ञान संवाद के लिए प्रशिक्षित पत्रकारों की कमी भी एक गंभीर समस्या है। हिंदी पत्रकारिता की दुनिया को देखें तो विज्ञान पत्रकार गिनती में नगण्य माने जा सकते हैं। हिंदी में वैज्ञानिक लेखन की परंपरा विकसित हो रही है, पर उसे संस्थागत समर्थन और अकादमिक सहयोग की आवश्यकता है। कोविड महामारी के समय विज्ञान पत्रकारिता का एक अत्यंत विकृत रूप हमारे सामने आया। समाज उस वक्त सूचनाओं के लिए त्राहिमाम कर रहा था। तरह-तरह की अटकलों को लेकर लिखा गया लेख हिंदी के पाठकों को न सिर्फ अंदर से डराता रहा बल्कि आने वाले भविष्य के लिए एक भ्रामक स्थिति भी उत्पन्न करने में सहायक बना रहा। संपूर्ण वैज्ञानिक आधार को प्रस्तुत किए बिना दवाओं और टीकों की जानकारी सामान्य पाठक वर्ग को समझ नहीं आ रही थी। जब हम साइंटिफिक आउटरीच के बारे में सोचते हैं तो हमेशा भारत को 121 मुख्य भाषाओं वाले देश के रूप में जाना जाता है। इनमें सिर्फ 22 भाषाओं को आधिकारिक रूप से स्वीकृति दी गई है। इसके बावजूद विज्ञान समाचारों का प्रकाशन ज्यादातर इंग्लिश या हिंदी भाषा में ही दिखता है। नतीजतन इन दोनों से इतर अन्य भाषाओं के लोग विज्ञान की

खबरों से अछूते रह जाते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विज्ञान पत्रकारिता आज कई बड़े सर्कुलेशन नेटवर्क के बावजूद देश की दो तिहाई जनता तक भी पहुंचने में सक्षम नहीं है।

कृषि पत्रकारिता : खेत से खबर तक की दूरी

भारत एक कृषि प्रधान देश है और हिंदी भाषी क्षेत्र देश की कृषि अर्थव्यवस्था का बड़ा हिस्सा संभालते हैं। फिर भी कृषि से जुड़ी खबरें अक्सर मौसम, फसल उत्पादन या सरकारी योजनाओं तक सीमित रह जाती हैं। खेती की बदलती तकनीक, बीज अनुसंधान, जैविक खेती, जल प्रबंधन और कृषि बाजार की संरचना जैसे विषयों पर गहन पड़ताल कम दिखाई देती है। भारत में पॉपुलर साइंस जर्नलिस्ट की संख्या बहुत कम है, जबकि देश गंभीर पर्यावरणीय संकटों और क्लाइमेट चेंज के असर का सामना कर रहा है। इसलिए अब पहले से ज्यादा साइंस कम्युनिकेशन की जरूरत है। कम ट्रेनिंग वाले पत्रकार जो काम कर रहे हैं, उसे रिटायर्ड साइंटिस्ट शायद ज्यादा अच्छे से इस कमी को पूरा कर सकते हैं। इजराइल की एक स्टडी बताती है कि साइंटिस्ट बिना साइंस बैकग्राउंड वाले पत्रकारों से अच्छे साइंस कम्युनिकेटर होते हैं। साइंस जनरेशन की कमी के लिए हमें सिर्फ एक दूसरे पर दोषारोपण से बचना होगा। लोगों को जानकारी पाने के अपने अधिकार को समझना चाहिए और अपनी जिंदगी में साइंस को महत्व देना चाहिए। उन्हें अपना पुराना नजरिया बदलना होगा और अपने अंदर साइंटिफिक भावना पैदा करने की कोशिश करनी होगी। जब तक लोग विज्ञान पत्रकारिता को फैलाने की जिम्मेदारी नहीं लेंगे, भारत कभी भी एक टॉप टियर साइंटिफिक देश नहीं बन पाएगा।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद जैसी संस्थाएं लगातार नई किस्मों, तकनीकों और अनुसंधानों पर काम कर रही हैं, पर इन शोधों की जानकारी गांवों तक प्रभावी ढंग से नहीं पहुंच पाती। हिंदी पत्रकारिता के सामने चुनौती है कि वह शोध और किसान के बीच सेतु बने। आज किसान केवल परंपरागत खेती तक सीमित नहीं है। वह ड्रोन तकनीक, मौसम पूर्वानुमान ऐप सहित वैश्विक बाजार से जुड़ रहा है, लेकिन ग्रामीण संवाददाताओं के पास संसाधनों और प्रशिक्षण की कमी के कारण इन परिवर्तनों की समग्र रिपोर्टिंग संभव नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त कृषि से जुड़े राजनीतिक और आर्थिक दबाव भी पत्रकारिता की स्वतंत्रता को प्रभावित करते हैं। न्यूनतम समर्थन मूल्य, कृषि कानून, खाद-बीज कंपनियों की भूमिका-यह सभी विषय संवेदनशील हैं। पत्रकार को तथ्यपरक रहते हुए किसानों की वास्तविक आवाज सामने लानी होती है, जो आसान नहीं है।

पर्यावरण पत्रकारिता : विकास और विनाश के बीच

जलवायु परिवर्तन, वायु प्रदूषण, जल संकट और जैव विविधाता का क्षरण आज केवल पर्यावरणीय मुद्दे नहीं बल्कि सामाजिक-आर्थिक संकट बन चुके हैं। हिंदी पट्टी के शहर-दिल्ली, लखनऊ, पटना-हर वर्ष प्रदूषण और गर्मी की मार झेलते हैं। फिर भी पर्यावरण पत्रकारिता को अक्सर 'सॉफ्ट बीट' मान लिया जाता है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम और विश्व मौसम विज्ञान संगठन की रिपोर्टें



बार-बार चेतावनी देती हैं कि दक्षिण एशिया जलवायु परिवर्तन से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्रों में है। लेकिन इन अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टों को स्थानीय संदर्भ में समझाने का प्रयास हिंदी मीडिया में सीमित है। पर्यावरणीय रिपोर्टिंग की चुनौती यह भी है कि इसमें आंकड़ों, वैज्ञानिक शोध और नीति विश्लेषण की समझ आवश्यक है। खनन परियोजनाओं, बांध निर्माण या औद्योगिक विस्तार से जुड़े मुद्दों में सत्ता, उद्योग और स्थानीय समुदायों के हित टकराते हैं। ऐसे में पत्रकार को तथ्यों की जांच, जमीनी पड़ताल और दीर्घकालिक प्रभावों को सामने लाने का साहस दिखाना पड़ता है।

डिजिटल युग और नई चुनौतियां

डिजिटल मीडिया के विस्तार ने सूचना की गति बढ़ा दी है, लेकिन सत्यापन की प्रक्रिया को कमजोर भी किया है। सोशल मीडिया पर आधी-अधूरी वैज्ञानिक जानकारी या पर्यावरण से जुड़ी अफवाहें तेजी से फैलती हैं। कोविड-19 महामारी के दौरान हमने देखा कि किस प्रकार गलत वैज्ञानिक दावों ने भ्रम की स्थिति पैदा की। हिंदी पत्रकारिता के सामने चुनौती है कि वह फेक न्यूज और अपुष्ट सूचनाओं के बीच विश्वसनीयता बनाए रखे। इसके लिए डाटा पत्रकारिता, अनुसंधान-आधारित रिपोर्टिंग और विशेषज्ञों से संवाद को बढ़ाना होगा। विज्ञान, कृषि और पर्यावरण पत्रकारिता को मजबूत बनाने के लिए कुछ ठोस कदम आवश्यक हैं। पहला-मीडिया संस्थानों में विषय विशेषज्ञ पत्रकारों की नियुक्ति और नियमित प्रशिक्षण। विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों के साथ साझेदारी से पत्रकारों की समझ विकसित की जा सकती है। दूसरा-ग्रामीण और अर्धशहरी क्षेत्रों में संवाददाताओं को तकनीकी संसाधन और शोध सामग्री उपलब्ध कराना। स्थानीय भाषायी विविधता को ध्यान में रखते हुए सामग्री तैयार की जानी चाहिए। तीसरा-दीर्घकालिक खोजी रिपोर्टिंग को प्रोत्साहन। पर्यावरण या कृषि से जुड़े मुद्दे एक दिन की खबर नहीं होते। वे निरंतर निगरानी और विश्लेषण की मांग करते हैं।

अंतत: हिंदी पत्रकारिता को अपनी सामाजिक जिम्मेदारी का बोध फिर से गहरा करना होगा। विज्ञान केवल प्रयोगशाला की बात नहीं, कृषि केवल खेत की समस्या नहीं और पर्यावरण केवल जंगलों का प्रश्न नहीं-यह तीनों हमारे अस्तित्व, अर्थव्यवस्था और भविष्य से जुड़े विषय हैं। जब हिंदी पत्रकारिता इन मुद्दों को गंभीरता, संवेदनशीलता और बौद्धिक ईमानदारी के साथ उठाएगी, तभी वह अपने पाठकों के बीच भरोसे की वह परंपरा कायम रख पाएगी, जिसने उसे स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों से लेकर आज तक प्रासंगिक बनाए रखा है। विज्ञान की जटिलता, कृषि की जमीनी हकीकत और पर्यावरण की चेतावनी-इन तीनों के बीच संतुलन साधना ही आज की हिंदी पत्रकारिता की सबसे बड़ी कसौटी है।



जो पत्रकार एआई से दोस्ती नहीं करेंगे, वे हाशिए पर चले जाएंगे



रणविजय सिंह
विशेष संवाददाता
नवभारत टाइम्स, लखनऊ

इक्कीसवीं सदी में हिंदी पत्रकारिता में बहुआयामी बदलाव हुआ है। अखबार के पन्नों और न्यूज चैनलों के न्यूज रूम से निकलकर हिंदी पत्रकारिता मोबाइल स्क्रीन, पॉडकास्ट, ओटीटी और सोशल मीडिया की फीड तक का सफर तय कर चुकी है। अब सबसे तेज के साथ विश्वसनीयता और निष्पक्षता की चुनौती बढ़ गई है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि मोबाइल रखने वाला हर शख्स रिपोर्टर है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने हर किसी को अपनी बात कहने और उसे सबके सामने रखने का मौका मुहैया करा दिया है। ऐसे में चारों तरफ से सूचनाओं और कंटेंट की बरसात हो रही है। सोशल मीडिया पर एकतरफा सूचनाओं की भरमार है। बिना पुष्टि किए और दूसरा पक्ष जाने बगैर लाइक, कमेंट और फॉरवर्ड का चलन बढ़ा है। बड़ी-बड़ी घटना मोबाइल स्क्रीन पर कुछ ही देर में वायरल हो चुकी होती है। विश्वसनीय, निष्पक्ष और सच... हर सदी में पत्रकार और पत्रकारिता की ताकत थी और 21वीं सदी में भी यही पत्रकार और पत्रकारिता को प्रासंगिक बनाए रखेगी। 21वीं सदी में आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस पत्रकारों के काम करने के तरीके, सोचने और लेखन शैली में क्रांतिकारी बदलाव करेगा। इसकी झलक दिखनी शुरू भी हो गई है। कई बड़े मीडिया हाउस अपने लिए एआई मॉडल विकसित भी कर लिए हैं, जबकि कुछ करने वाले हैं। ऐसे में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आज के दौर का जो पत्रकार एआई से दोस्ती नहीं करेगा, वह उसी तरह अप्रासंगिक होता जाएगा जैसे 20वीं सदी में कंप्यूटर को खारिज करने वाले पत्रकार बाद के दिनों में हाशिए पर चले गए।

बीसवीं सदी में हिंदी पत्रकारिता की पहचान अखबार, साप्ताहिक पत्रिका और रेडियो से थी। अखबार सुबह की चाय के साथ घर-घर दस्तक देते थे। संपादकीय पन्ने पर विचारों की तपिश होती थी और रिपोर्टिंग में जमीन की गंध। मगर 21वीं सदी ने इस तस्वीर में कई नए रंग भर दिए हैं। इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया ने खबरों की दुनिया को सातों दिन 24 घंटे का बना दिया। अब न्यूज रूम सिर्फ दफ्तर नहीं, एक डिजिटल कमांड सेंटर है।

रिपोर्टर फील्ड में है तो साथ में मोबाइल कैमरा, लाइव-स्ट्रीम और सोशल मीडिया अपडेट भी है। खबर अब अगले दिन के अखबार में छपने से पहले मोबाइल स्क्रीन पर आपकी आंखों के सामने से कई बार गुजर चुकी होती है। समय की रफ्तार ने सदी बदल दी, लेकिन पत्रकारिता और पत्रकार को लेकर समाज का सवाल वही पुराना है। सत्ता से सवाल कौन पूछेगा? समाज की नब्ज कौन टटोलेगा? आम आदमी की आवाज को कौन आगे ले जाएगा? सच और न्याय की मशाल कौन उठाएगा? 21वीं सदी की हिंदी की पत्रकारिता के सामने भी यही सवाल हैं। इन सवालों के साथ पत्रकारिता के एक तरफ टेक्नोलॉजी का तूफान है तो दूसरी तरफ अवाम का भरोसा। यह दौर इंकलाब का भी है और इम्तिहान का भी।

21वीं सदी में पत्रकारिता पर बाजार का असर गहरा हुआ है। टीआरपी और क्लिक रेटिंग से आगे व्यूज की दौड़ कंटेंट की दिशा तय कर रही है। निष्पक्ष, विश्वसनीय और सच के बजाय 'जो बिके और जिसमें व्यू मिल रहा हो वही दिखाओ' का फॉर्मूला धीरे-धीरे हावी हुआ। गंभीर विश्लेषण की जगह सनसनीखेज सुर्खियां, बहसों में शोर और स्टूडियो में आरोप-प्रत्यारोप ने जगह ले ली। इसके साथ ही कॉरपोरेट पूंजी और राजनीतिक प्रभाव ने संपादकीय स्वतंत्रता को प्रभावित किया है।

वहीं, सोशल मीडिया के दौर में हर नागरिक पत्रकार की तरह है। हर नागरिक के हाथ में कैमरा है। हर शख्स रिपोर्टर है। एक्स, फेसबुक, यूट्यूब और इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफॉर्म्स ने खबरों की रफ्तार को बेतहाशा तेज किया। टारगेट ऑडिएंस के मुताबिक कंटेंट तैयार हो रहा है, क्योंकि उस पर ही व्यू मिलते हैं। इसका नतीजा है कि एक पक्षीय खबरें, फेक न्यूज, ट्रोल आर्मी और अफवाहों के सैलाब भी आए हैं। सूचना और

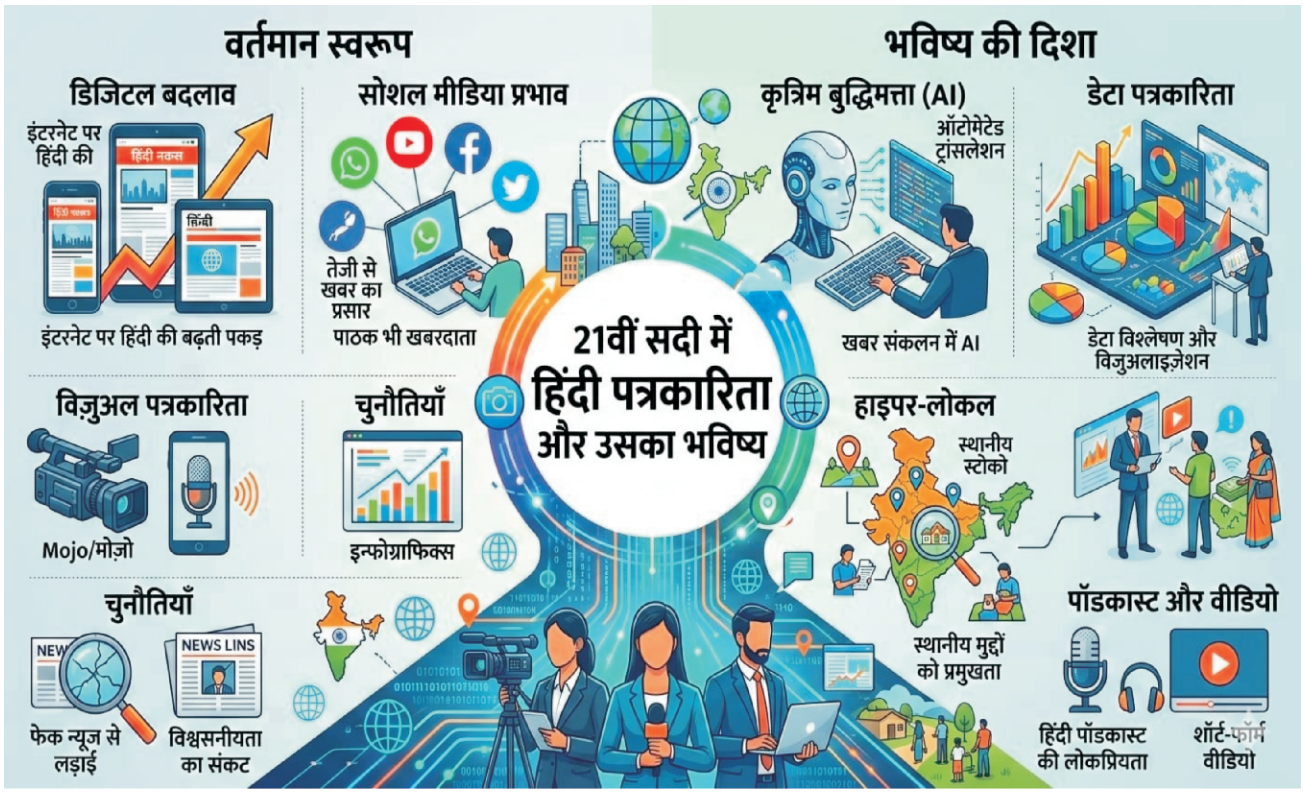
दुष्प्रचार के बीच का फासला धुंधला हो गया। हिंदी पत्रकारिता के सामने सबसे बड़ा इम्तिहान यही है...सबसे तेज के साथ विश्वसनीयता के बीच संतुलन कैसे बनाया जाए?

भाषा के लिहाज से भी 21वीं सदी की हिंदी पत्रकारिता में बदलाव साफ दिखने लगा है। खड़ी बोली के साथ-साथ उर्दू, अंग्रेजी और क्षेत्रीय शब्दों का घुलना-मिलना बढ़ा है। यह बदलाव जरूरी है, क्योंकि समाज की जुबान वही है, जो सड़कों पर बोली जाती है। इन सबके बीच चुनौती यह है कि भाषा की आत्मा बची रहे। पत्रकारिता की हिंदी ऐसी हो जो आम आदमी तक पहुंचे, मगर उसकी तहजीब और तमीज भी कायम रखे। भाषा जितनी सरल होगी, असर उतना गहरा होगा। आज का पाठक 'हिंग्लिश' से वाकिफ है, मगर वह भरोसेमंद, साफ और सटीक हिंदी भी चाहता है। हिंदी पत्रकारिता अब सिर्फ दिल्ली-लखनऊ समेत महानगरों तक सीमित नहीं। छोटे शहरों और कस्बों से निकलने वाली खबरें भी राष्ट्रीय विमर्श तय करने लगी हैं। रीजनल न्यूज पोर्टल और लोकल चैनल स्थानीय मुद्दों को सामने ला रहे हैं। यह लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करने वाला है। आने वाले दिनों में क्षेत्रीय पत्रकारिता और भी प्रभावी होगी, क्योंकि असली कहानियां वहीं छिपी हैं।

तकनीक के युग में नई पीढ़ी के सामने चुनौती

हिंदी पत्रकारिता में 21वीं सदी आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस के लिहाज से काफी अहम साबित होगी। आज एक सामान्य प्रेस नोट से लेकर जटिल शासनादेश और रिसर्च पेपर तक को महज एआई टूल्स के जरिए प्रॉम्पट देकर महज कुछ मिनटों में खबर का आकार दिया जा सकता है। विभागीय डेवलपमेंट भी व्हाट्सएप ग्रुप पर आ रहे हैं। अधिकारी हर डेवलपमेंट और बड़ी घटनाओं पर अपनी प्रतिकिया सोशल मीडिया के जरिए जारी कर रहे हैं। एक तरफ जहां सुविधा है, वहीं नई पीढ़ी के पत्रकारों के लिए चुनौती भी है।

एक पत्रकार की असली ताकत उसके सूत्र होते हैं। इसके लिए ग्राउंड रिपोर्टिंग और विभाग में नियमित जाकर वहां अधिकारियों-कर्मचारियों के बीच बैठना, उनसे मिलना जुलना और ऑफिस के बाहर भी समय बिताना जरूरी है। पुराने पत्रकारों को रुटीन तक की सूचना के लिए विभाग जाना मजबूरी थी। बड़े अधिकारी भी उनसे सीधे मिलते थे। कर्मचारी संगठन मजबूत थे। उसके पदाधिकारी खुलकर सिस्टम के खिलाफ बोलते थे। पत्रकारों को खबरों के साथ ही उससे जुड़े दस्तावेज तक मुहैया कराते थे। इसके चलते 20वीं सदी तक के पत्रकारों के पास भरोसेमंद सूत्रों की लंबी





फेहरिस्त बन जाती थी। इसके उलट नई पीढ़ी के पत्रकारों को रुटीन से जुड़ी हर सूचना व्हाट्सएप ग्रुपों से आसानी से मिल जा रही। अधिकारी और पत्रकारों के बीच विभाग का व्हाट्सएप ग्रुप और मीडिया सेल आ गया। कर्मचारी संगठन धीरे-धीरे कमजोर होकर लगभग खत्म होने के कगार पर पहुंच चुके हैं या फिर खुद भी सिस्टम का हिस्सा बनते जा रहे हैं। इन चुनौतियों के बीच नई पीढ़ी के पत्रकार और पत्रकारिता का प्रभावित होना लाजिमी है। इन बदलते हुए हालात के बीच 21वीं सदी के नए पत्रकारों को विभागों से जानकारी निकालने, उसकी पुष्टि करते हुए निष्पक्षता के साथ प्रकाशित करने के लिए रास्ते भी तलाशने होंगे।

डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर नई उम्मीदें

21वीं सदी ने चुनौतियों के साथ अवसर भी दिए हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने छोटे शहरों और स्वतंत्र पत्रकारों को मंच दिया। यूट्यूब चैनल, पॉडकास्ट, स्वतंत्र न्यूज पोर्टल और डाटा जर्नलिज्म जैसे नए आयाम उभरे हैं। अब कोई युवा पत्रकार बिना बड़े मीडिया हाउस के भी अपनी आवाज बन सकता है। क्राउड फंडिंग और सब्सक्रिप्शन मॉडल ने आर्थिक स्वतंत्रता के नए रास्ते खोले हैं। यह बदलाव उम्मीद जगाता है कि पत्रकारिता फिर से जनता के भरोसे पर खड़ी हो सकती है। अब बड़े मीडिया हाउसेज के लिए भी कोई खबर दबाना या उसे कम प्रभावशाली तरीके से लिखना-दिखाना आसान नहीं रहा। सोशल मीडिया पर खबर वायरल होने के बाद हर मीडिया हाउस पर दबाव पड़ता है। यही वजह है कि कई बार हाइपर लोकल स्तर की खबरें भी जनहित का मुद्दा बन जाती हैं, जबकि पहले कई बार यह सामने ही नहीं आ पाती थीं।

नैतिकता, जवाबदेही और संभावनाएं

पत्रकारिता महज एक पेशा नहीं बल्कि जिम्मेदारी भी है। इसलिए इसे लोकतंत्र का चौथा खंभा भी कहा जाता है। जब खबरें आधी-अधूरी हों, सूत्र और स्रोत संदिग्ध हो और तथ्य तोड़-मरोड़ कर पेश किया जाए तो लोकतंत्र के साथ ही सामाजिक तानाबाना भी कमजोर होता है। 21वीं सदी में फैक्ट-चेकिंग और डाटा-आधारित रिपोर्टिंग का महत्व बढ़ा है। पत्रकारों को तकनीकी दक्षता के साथ नैतिक प्रतिबद्धता भी रखनी होगी। नई सदी का एक सकारात्मक पहलू यह है कि न्यूज रूम में महिलाओं और युवाओं की भागीदारी बढ़ी है। महिलाएं अब सिर्फ मौसम, संस्कृति, कला और विज्ञान बीट पर 'सॉफ्ट स्टोरी' करने तक सीमित नहीं रहीं। अब वे राजनीति, अपराध, अर्थव्यवस्था और युद्ध जैसे मोर्चों पर प्रभावशाली तरीके से अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। यह 21वीं सदी की हिंदी पत्रकारिता की ताकत है।

21वीं सदी की हिंदी पत्रकारिता संक्रमण काल में है। बाजारवाद, राजनीतिक दबाव, फेक न्यूज, भाषा का संकट जैसी चुनौतियां हैं तो डिजिटल विस्तार, युवा ऊर्जा, स्वतंत्र मंच और तकनीकी संसाधनों की ताकत से नई संभावनाएं भी पैदा हुई हैं। 21वीं सदी की हिंदी पत्रकारिता अगर अपनी जड़ों से जुड़ी रहे और समय के साथ कदम मिलाए तो उसका भविष्य न सिर्फ उज्ज्वल होगा बल्कि लोकतंत्र की असली ताकत भी बनेगा। सवाल यह नहीं कि पत्रकारिता का भविष्य क्या है? सवाल यह है कि हम उसे कैसा बनाना चाहते हैं?

महिला पत्रकारों के निर्भीक काम की रोमांचक कहानी



डॉ. श्वेता आर्या
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
रामलाल आनंद महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

पत्रकारिता हमेशा से ही कलम के जरिए लाई गई क्रांति के रूप में जानी जाती रही है। आजादी के पहले से लेकर आजादी के बाद भी पत्रकारिता की स्याही ने समाज-देश में कई बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, लेकिन बदलते समय का प्रभाव पत्रकारिता पर नहीं रहा, ऐसा कहना गलत होगा। 90 के दशक में देश ने जब अर्थव्यवस्था का ढांचा बदला तो उसका असर पत्रकारिता पर भी देखने को मिला। नई तकनीक आई और बाजार में प्रिंट के साथ-साथ टीवी पत्रकारिता का फैलाव हुआ। उसी के साथ हुआ रियल टाइम में खबरों का प्रभाव। टीवी पत्रकारिता अपने साथ केवल समाचार कहने और लिखने की नई कला ही नहीं लाई बल्कि टीवी के नाम से न्यूज स्टूडियो की चमकती रोशनी, तेज बहसें और ब्रेकिंग न्यूज की आवाज हमारे सामने उभरती है। यह वह दौर था जब पत्रकारिता के साथ ग्लैमर को जोड़ कर देखा जाने लगा। इस ग्लैमर का केन्द्र बनीं महिला पत्रकार। आज माध्यम चाहे जो भी रहे। प्रिंट, टीवी से लेकर डिजिटल तक, यह लेख पत्रकारिता की इस चमकदार दुनिया के पीछे की एक लंबी, साहसी और कभी-कभी मौन रही यात्रा को विश्लेषित करता है। इस लेख के माध्यम से उन कहानियों को आपके सामने ला रहे हैं, जो सिर्फ पेशेवर सफलता को बयां नहीं करती बल्कि सामाजिक बदलाव, संघर्ष, साहस और आवाज बनने की गवाही देती हैं। यह कहानी है उन महिलाओं की, जिन्होंने चुप्पी से शुरुआत की और आज डिजिटल दुनिया में लाखों लोगों तक अपनी आवाज पहुंचा रही हैं।

हिंदी पत्रकारिता में महिलाओं की ऐतिहासिक भूमिका

200 साल पूरे कर चुकी हिंदी पत्रकारिता ने औपनिवेशिक काल से लेकर आज की तेज रफ्तार, डिजिटल-प्रथम उद्योग बनने तक एक लंबी यात्रा तय कर ली है। इन वर्षों में बदलाव तो बहुत हुए हैं, लेकिन अपने मूल से पत्रकारिता ने कभी नाता नहीं तोड़ा। इस केंद्र में महिला पत्रकारों की कहानी उन्नीसवीं सदी की गुमनाम पत्र लेखिकाओं से लेकर आज की आधुनिक संपादकों और खोजी पत्रकारिता की सशक्त हस्तियों तक की भूमिका अति विशिष्ट बन जाती है।

19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में पत्रकारिता सामाजिक जागरण का माध्यम थी। इसी दौर में महिलाओं ने अपनी पहली उपस्थिति दर्ज कराई, लेकिन अधिकांशत: गुमनाम लेखन के रूप में। 1888 में हेमंत कुमारी देवी ने हिंदी पत्रिका सुगृहिणी की शुरुआत की। यह वह दौर था जब महिलाओं की शिक्षा को भी असामान्य माना जाता था, लेकिन हेमंत कुमारी ने अपने साथ-साथ बाकी महिलाओं को घरेलू विज्ञान, स्वास्थ्य और सामाजिक सुधार जैसे विषयों पर लेख प्रकाशित कर सामाजिक चेतना को दिशा दिखाई। इसके बाद महिलाओं की आवाज पत्रिकाओं के माध्यम से और मजबूत हुई। चांद और गृहलक्ष्मी जैसी पत्रिकाएं महिलाओं के अनुभवों और संघर्षों की अभिव्यक्ति का मंच बनीं। कई महिलाएं गुमनाम रूप से बाल विवाह, पर्दा प्रथा और सामाजिक बंधनों पर लिखती थीं। देश आजाद हो चुका है, लेकिन न्यूज रूम में महिला पत्रकारों की संख्या नाम मात्र ही थी और जो थी उन्हें अक्सर 'सॉफ्ट बीट' जैसे संस्कृति या जीवन शैली तक समेट कर रखा जाता था। इस स्थिति को निर्णायक रूप से चुनौती दी मृणाल पांडे ने। मृणाल पाण्डे एक ऐसी पत्रकार हैं, जो उस समय से लिख रही हैं जब समाज में महिलाओं से साहित्यिक या बौद्धिक कार्य की अपेक्षा नहीं की जाती थी। लेकिन मृणाल पाण्डे ने सभी सीमाओं का लांघा, जो न केवल प्रमुख हिंदी दैनिक 'हिन्दुस्तान' की पहली महिला प्रधान संपादक बनीं बल्कि बाद में प्रसार भारती की अध्यक्ष भी रहीं। उनके नेतृत्व ने साबित कर दिया कि महिला पत्रकार केवल रिपोर्टिंग नहीं, बल्कि मीडिया संस्थानों का नेतृत्व भी कर सकती हैं। इस कड़ी में एक और नाम याद आता है। वह नाम है कावेरी बामजेई का। इंडिया टुडे की इकलौती महिला संपादक के रूप

में कावेरी बामजेई ने तीस वर्षों तक निर्णायक भूमिका निभाई। 1990 के दशक में निजी समाचार चैनलों के आगमन ने मीडिया जगत को पूरी तरह बदल दिया। न्यूज रूम का विस्तार हुआ। दर्शकों की संख्या बढ़ी और महिलाओं के लिए अवसरों के नए दरवाजे खुले। इस दौर में महिला पत्रकारों ने समाचार प्रोडक्शन के नए आयामों में अपनी भूमिका निभाई। एंकरिंग, रिपोर्टिंग, संपादन और खोजी पत्रकारिता जैसे नए क्षेत्रों में उन्होंने अपनी जड़ें जमाना शुरू किया और यहीं से शुरू हुआ महिला पत्रकारों के प्रभाव का दौर। टीवी पत्रकारिता के प्राइम टाइम पर महिला एंकरों का प्रभाव इतना मजबूत हुआ कि वे जनमत निर्माण की प्रमुख आवाज बन गईं। शिरीन भान, रितुल जोशी, अंजना ओम कश्यप, श्वेता सिंह, निधि कुलपति, नगमा सहर, नीता शर्मा वे नाम हैं, जिन्होंने 90 से 2000 के दशक में टीवी पत्रकारिता के प्राइम टाइम को एक दशक से भी अधिक समय तक संचालित किया। यह सभी केवल चेहरे के तौर पर स्क्रीन पर नहीं दिखते। इन्होंने जनमत निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शायद यही वजह है कि चेहरे से ऊपर एक नाम स्थापित किया और आज मीडिया संस्थानों में मैनेजमेंट स्तर पर पदों को संभाल रही हैं।

नए दौर की बेखौफ आवाजें

पिछले एक दशक में हिंदी पत्रकारिता में एक क्रांतिकारी बदलाव आया है। ग्लैमर से इतर महिला पत्रकार स्टीरियो टाइप छवि को तोड़ने के नए रास्ते पर निकल गई हैं। खोजी रिपोर्टिंग कर रही हैं। सत्ता से सवाल पूछ रही हैं और डिजिटल प्लेटफॉर्म पर स्वतंत्र पत्रकारिता को नई दिशा दे रही हैं। आइए पहचान कराते हैं उन पत्रकारों से जो नई सदी की निर्भीक आवाज बनकर देश–दुनिया के सामने सच का आइना ला रही हैं।

खोजी पत्रकारिता का साहस नेहा दीक्षित

मानव तस्करी और अवैध चिकित्सा परीक्षण जैसे गंभीर मुद्दों को उजागर करने वाली नेहा दीक्षित खोजी रिपोर्टिंग का पर्याय बन चुकी हैं। उनकी स्टोरी 'सैयदा एक्स' असंगठित महिलाओं के शोषण और उनके संघर्षों की कहानी को दुनिया के सामने बयां करती है। 2016 में उन्हें चमेली देवी पुरस्कार सहित कई अवार्ड मिले। साथ ही उन्हें कमेटी टू प्रोटेक्ट जर्नलिस्ट द्वारा अंतरराष्ट्रीय प्रेस स्वतंत्रता सम्मान भी मिला। एक साक्षात्कार में वह बताती हैं कि पहले महिलाओं को 'फूल और फैशन' जैसे विषय दिए जाते थे, लेकिन अब वह राजनीति और अपराध पर भी निर्णायक रिपोर्टिंग कर रही हैं।

डिजिटल युग की वैश्विक आवाज पालकी शर्मा

जब रात के समय दुनिया की बड़ी खबरें शांत, स्पष्ट और प्रभावशाली आवाज में विश्लेषित होती थीं तो लाखों दर्शकों के लिए वह आवाज सिर्फ एक एंकर की नहीं बल्कि समझ की मार्गदर्शक बन जाती थी। यह आवाज थी पालकी शर्मा की। एक ऐसी पत्रकार, जिन्होंने खबरों को केवल बताया नहीं बल्कि समझाया। उनकी पत्रकारिता में तथ्य, ठहराव, संतुलित विश्लेषण और वैश्विक दृष्टि स्पष्ट रूप से दिखती है। यही संयोजन उन्हें भारतीय टीवी पत्रकारिता के सबसे प्रभावशाली चेहरों में शामिल करता है। यूं तो उन्होंने अपने करियर की शुरुआत रिपोर्टिंग से की, लेकिन अपनी ताकत का असल परिचय उन्होंने खबर को इकट्ठा करके नहीं बल्कि खबर के पीछे की कहानी को समझाकर और दर्शकों तक सरल, व्यवस्थित और तार्किक रूप में पहुंचा कर की। अंतरराष्ट्रीय राजनीति, कूटनीति या फिर वैश्विक अर्थव्यवस्था जैसे जटिल विषयों पर पालकी ने अपनी गहरी पकड़ बनाई, जो आम तौर पर मौजूदा समय की पत्रकारिता में कम देखने को मिलती है। उनकी पहचान को नई ऊंचाई मिली अंतरराष्ट्रीय समाचार चैनल वियॉन के प्रमुख शो ग्रैविटाज से। यह केवल एक न्यूज बुलेटिन नहीं था, यह वैश्विक घटनाओं का विश्लेषण था, जो दर्शकों को सिर्फ क्या हुआ नहीं बल्कि क्यों हुआ और उसका असर क्या होगा भी समझाता था।

ग्रैविटाज ने उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई। दर्शकों ने ऐसी खबरों को हाथों हाथ लिया जो भारत के दृष्टिकोण से व्यवस्थित ढंग से समझ विकसित करता है। इस तरह पालकी ने पिछले कुछ समय से बाजारू रूप में परोसी जाने वाली खबरों की रूपरेखा को ही बदल दिया। एक बार फिर से गंभीर विश्लेषण को पत्रकारिता में जगह मिली। इतना ही नहीं उन्होंने मीडिया उद्योग की आंतरिक संस्कृति पर भी खुलकर बात की। एक चर्चित साक्षात्कार में उन्होंने न्यूज रूम के अनौपचारिक नेटवर्क, शक्ति संतुलन और करियर अवसरों में असमानताओं पर टिप्पणी की। उनका मानना है कि मीडिया

उद्योग में प्रतिभा के साथ-साथ नेटवर्किंग भी निर्णायक भूमिका निभाती है। यह व्यवस्था कई बार निष्पक्ष नहीं होती। इस प्रकार उनकी स्पष्टवादिता ने उन्हें सिर्फ पत्रकार ही नहीं बल्कि मीडिया संस्कृति की आलोचक आवाज भी बना दिया।

ग्राउंड जीरो की क्रांति कविता देवी

खबर लहरिया को आज बुंदेलखंड की मिट्टी ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया जानती है और इस कहानी का तानाबाना बुना कविता देवी ने। ग्रामीण भारत की धूल भरी पगडंडियों से उठकर पत्रकारिता की वैश्विक पहचान बनने तक की कहानी है कविता देवी की। एक ऐसी पत्रकार जिन्होंने हाशिए को खबर का केंद्र बना दिया। बुंदेलखंड की सामाजिक जमीनी हकीकत को दुनिया तक पहुंचाने वाली उनकी पहल खबर लहरिया आज ग्रामीण पत्रकारिता का सशक्त प्रतीक है। दलित और ग्रामीण महिलाओं की टीम के साथ उन्होंने स्थानीय भ्रष्टाचार, लैंगिक हिंसा और प्रशासनिक उपेक्षा पर निर्भीक रिपोर्टिंग की, जिसके लिए उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मान और पत्रकारिता के अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार मिले। उनका मानना है कि पत्रकारिता तब तक अधूरी है जब तक सबसे कमजोर आवाज सुनी न जाए। कविता देवी ने साबित किया कि असली खबर सत्ता के गलियारों में नहीं बल्कि उन गांवों में मिलती है, जहां सच अब भी बिना माइक्रोफोन के बोलता है। प्रिंट से डिजिटल तक की यात्रा कर इस मंच ने भ्रष्टाचार, लैंगिक हिंसा और स्थानीय समस्याओं को राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया।

स्थानीय सच्चाइयों की आवाज नीतू सिंह

नीतू सिंह की पहचान एक स्वतंत्र स्थानीय पत्रकार के रूप में बनी, लेकिन उनकी असली पहचान है अनसुनी आवाजों की दुभाषिया होना। जब उन्होंने ग्रामीण भारत के सबसे वंचित समुदायों की वास्तविक स्थितियों पर काम शुरू किया, तब उन्हें समझ आया कि देश की सबसे बड़ी खबरें अक्सर उन जगहों पर छिपी होती हैं, जहां मीडिया की नजर कम जाती है। यही विचार उन्हें चित्रसेनपुर गांव की मुसहर बस्ती तक पहुंचा देता है, जहां उन्होंने देखा कि बच्चे बीमार हैं। पीने के साफ पानी का साधन नहीं। शौचालय नहीं और जीवन की बुनियादी सुविधाएं भी किसी दूर के सपने जैसी हैं। इस बस्ती पर उनकी रिपोर्टिंग केवल एक खबर नहीं थी, वह एक दस्तावेज थी, जो गरीबी, सामाजिक उपेक्षा और प्रशासनिक असमानता की परतें खोलती थी। उनकी कार्यशैली में एक खास बात साफ दिखाई देती है-धैर्य। वह जल्दी में खबर नहीं बनातीं बल्कि कहानी को समझती हैं। लोगों के बीच समय बिताती हैं और फिर उस अनुभव को शब्द और दृश्य में ढालती हैं। आज जब मीडिया की दुनिया तेजी से डिजिटल और शहरी होती जा रही है। नीतू सिंह हमें याद दिलाती हैं कि भारत की असली कहानियां अभी भी गांवों में धड़कती हैं। उनकी पत्रकारिता शोर नहीं करती, लेकिन गूंजती बहुत दूर तक है। वह समझाती हैं कि खबर केवल सूचना नहीं बल्कि जिम्मेदारी है। जब कोई पत्रकार इस जिम्मेदारी को निष्ठा से निभाता है तो उसकी आवाज सबसे शक्तिशाली बन जाती है।

मानवाधिकार और जेंडर विमर्श की पैरोकार दिव्या आर्या

कुछ पत्रकार खबरें सुनाते हैं और कुछ पत्रकार समाज को आइना दिखाते हैं। दिव्या आर्या दूसरी श्रेणी की पत्रकार हैं, जो केवल घटनाओं का विवरण नहीं देतीं, उनके पीछे छिपे सामाजिक सच, मानवीय अनुभव और सत्ता की संरचनाओं को उजागर करती हैं। उनकी पत्रकारिता तेज नहीं, गहरी है। शोरगुल वाली नहीं, संवेदनशील है। सबसे महत्वपूर्ण-मानव अधिकारों के पक्ष में स्पष्ट और निर्भीक है। उनकी पहचान विशेष रूप से बीबीसी हिंदी में किए गए उनके व्यापक और प्रभावशाली कार्य से बनी। यहां उन्होंने राजनीति से लेकर धर्म, शिक्षा, जाति और लैंगिक असमानता तक अनेक जटिल विषयों को गहराई से कवर किया। लेकिन उनकी पत्रकारिता की असली ताकत है-मानवीय दृष्टिकोण। वह खबर को सिर्फ घटना नहीं मानतीं बल्कि अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने भारतीय समाज में जेंडर असमानता के विभिन्न रूपों-सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक-पर विस्तार से रिपोर्टिंग की है। दिव्या आर्या की पत्रकारिता को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान मिला है, विशेष रूप से महिलाओं के सशक्तिकरण और जेंडर समानता पर उनके प्रभावशाली काम के लिए।

इनकी पत्रकारिता ने क्या बदला

समकालीन महिला पत्रकारों ने पत्रकारिता के स्वरूप और प्रभाव-दोनों को गहराई से बदल दिया है। उनकी रिपोर्टिंग ने

केवल खबरें उजागर नहीं कीं बल्कि कई राज्यों में अवैध खनन, मानवाधिकार उल्लंघन और प्रशासनिक लापरवाही जैसे गंभीर मामलों में कानूनी कार्रवाई को प्रेरित किया, जिससे मीडिया की जवाबदेही सुनिश्चित करने वाली भूमिका और मजबूत हुई। साथ ही, उन्होंने लंबे समय से चली आ रही सॉफ्ट बीट की धारणा को निर्णायक रूप से तोड़ दिया है। आज महिलाएं रक्षा, अर्थव्यवस्था और आंतरिक सुरक्षा जैसे जटिल और संवेदनशील विषयों पर प्रभावशाली रिपोर्टिंग कर रही हैं, जिससे पत्रकारिता में विषयगत संतुलन और गहराई आई है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय भाषाओं और बोलियों में रिपोर्टिंग ने समाचारों को अधिक लोकतांत्रिक बनाया है, जो लोग पहले केवल खबरों के विषय हुआ करते थे। वह अब अपनी बात कहने वाले सक्रिय सहभागी बन रहे हैं। इस तरह महिला पत्रकारों ने न केवल खबरों की दिशा बदली है बल्कि पत्रकारिता को अधिक समावेशी, संवेदनशील और प्रभावशाली बनाया है।

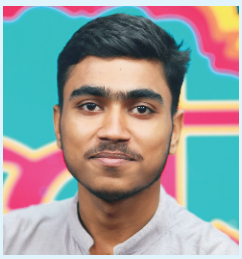
चुनौतियां अभी और हैं। पत्रकारिता में बढ़ती उपलब्धियों के बावजूद महिला पत्रकारों का सफर पूरी तरह सहज नहीं हुआ। आज वे एक ऐसी दोहरी दुनिया में काम कर रही हैं, जहां अवसरों के साथ गंभीर चुनौतियां मौजूद हैं। डिजिटल युग ने उन्हें व्यापक मंच दिया है, लेकिन यही मंच कई बार ऑनलाइन ट्रोलिंग, लैंगिक टिप्पणियों और व्यक्तिगत उत्पीड़न का कारण बन जाता है। इससे पेशेवर काम के साथ मानसिक दबाव बढ़ता है। बड़े मीडिया संस्थानों में उनकी दृश्य उपस्थिति तो बढ़ी है, पर निर्णय लेने वाले शीर्ष प्रबंधन पदों पर उनका प्रतिनिधित्व अब भी सीमित है, जो संस्थागत असमानता को दर्शाता है। भाषा आधारित पूर्वाग्रह मौजूद हैं। अंग्रेजी मीडिया की तुलना में हिंदी पत्रकारों के काम को कम प्रतिष्ठा या कम वैश्विक पहचान मिलती है। इसके अलावा देर रात की ड्यूटी, लगातार यात्रा और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाना भी विशेष रूप से कठिन हो जाता है। इसके साथ ही फील्ड रिपोर्टिंग, विशेषकर संवेदनशील या संघर्षग्रस्त क्षेत्रों में काम करते समय सुरक्षा के जोखिम के कारण चिंता बनी रहती है।

इन चुनौतियों के बीच भी महिला पत्रकार लगातार अपनी जगह बना रही हैं, लेकिन उनका संघर्ष याद दिलाता है कि समान अवसरों का लक्ष्य अभी पूरी तरह हासिल नहीं हुआ। हिंदी मीडिया में कार्यरत महिला पत्रकारों के सामने एक और महत्वपूर्ण चुनौती वेतन असमानता की है। समान योग्यता, अनुभव और जिम्मेदारियों के बावजूद कई बार उन्हें पुरुष सहयोगियों की तुलना में कम पारिश्रमिक मिलता है या वेतन वृद्धि और पदोन्नति की गति धीमी रहती है। यह अंतर आर्थिक असमानता के साथ पेशेवर मूल्यांकन में मौजूद संरचनात्मक पक्षपात को दर्शाता है। विशेष रूप से फ्रीलांस और क्षेत्रीय पत्रकारिता में यह समस्या अधिक गहरी है, जहां पारदर्शी वेतन संरचना का अभाव है। परिणाम स्वरूप भारत में अनेक महिला पत्रकारों को पेशेवर पहचान व आर्थिक स्थिरता दोनों के लिए अतिरिक्त संघर्ष करना पड़ता है, जो पत्रकारिता में वास्तविक लैंगिक समानता की राह को अब भी चुनौतीपूर्ण बनाता है।



भारत में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत 'उदन्त मार्तण्ड' के साथ

खींचो न कमान न तलवार निकालो
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।
– अकबर इलाहाबादी



आयुष प्रजापति
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
तृतीय वर्ष

19वीं सदी के आरंभ में भारत औपनिवेशिक शासन से जकड़ा हुआ था। अंग्रेज भारत पर शासन कर रहे थे। उन्हें भारतीय लोगों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। शिक्षित वर्ग में अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ रहा था। आम जनता की भाषा में सूचना का कोई माध्यम नहीं था। इन सबसे एक ऐसी स्थिति बनी, जिससे हिंदी प्रेस के जन्म की जमीन तैयार हुई। ऐसे समय में राजा राममोहन राय अग्रिम कतार में खड़े हुए। उन्होंने सबसे पहले प्रेस को सामाजिक उद्देश्य से जोड़ा। भारतीयों के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक हितों का समर्थन किया। समाज में व्याप्त अंधविश्वास और कुरीतियों पर प्रहार किया। हिंदी भाषा प्रेस की मदद से अंग्रेजों के खिलाफ जोरदार आवाज उठाई।

30 मई 1826 के दिन कलकत्ता से एक समाचार पत्र निकाला गया, जिसका नाम 'उदन्त मार्तण्ड' था। पंडित युगल किशोर शुक्ल इसके संपादक थे। यह हिंदी का साप्ताहिक समाचार पत्र था। इस तरह 'उदन्त मार्तण्ड' को हिंदी का पहला समाचार पत्र माना जाता है। कुछ ही समय बाद इस पर वित्तीय संकट छा गया। इस संकट के कारण 'उदन्त मार्तण्ड' को बंद करना पड़ा। इस पत्र के पहले अंक में स्पष्ट किया गया था, 'यह राजनीतिक और आर्थिक विषयों का साप्ताहिक है। इसका संबंध हर दल से है। मगर यह किसी दल के प्रभाव में नहीं आएगा।' इस तरह खड़ी बोली की झलक 'उदन्त मार्तण्ड' में दिखती है। इसकी प्रकाशन तिथि 30 मई को आधार मानकर ही प्रतिवर्ष 30 मई को 'राष्ट्रीय हिंदी पत्रकारिता दिवस' मनाया जाता है। वैसे देश में सबसे पहले समाचार पत्र की शुरुआत करने वाले जेम्स ऑगस्ट्स हिकी के पत्र 'बंगाल गजट' का अंग्रेज सरकार ने गला घोंट दिया। हिकी को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। हिकी के इस पत्र में पत्रकारिता की दृष्टि से अनेक कमियां थीं। लेखन भी अतिरेक भरा होता था। इस सबके बावजूद भारत में पत्रकारिता को जन्म देने का श्रेय हिकी को जाता है। इस प्रकार भारत में पत्रकारिता के उदय के साथ दो तत्व मुख्य रूप से सामने आए। पहला, सरकार और भ्रष्टाचार की आलोचना करना। दूसरा पहलू है–सरकार की ओर से उनका दमन करना।

1821 में राजा राममोहन राय ने साप्ताहिक 'मिरात–उल–अखबार' छापना शुरू किया। फिर 1829 में 'बंगदूत' निकाली गई। यह चार भाषाओं अंग्रेजी, बांग्ला, फ्रेंच और हिंदी में प्रकाशित होती थी। नीलरत्न हालदार इसके सह–संपादक थे। यह राजा राममोहन राय के विचारों और उनके प्रचार–प्रसार का माध्यम थी। इसका उद्देश्य रूढ़िवादिता, सामाजिक कुरीतियों और कट्टरता पर हमला करना था। इस तरह उन्होंने भी आजादी के आंदोलन में नियंत्रणों के खिलाफ याचिका डाली। उनके समकालीन जेम्स सिल्क के अंग्रेजी अखबार 'कलकत्ता जनरल' ने भी ऐसी ही भंडाफोड़ वाली पत्रकारिता की। साल 1854 में कलकता से पहला हिंदी दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' निकला। इसके संपादक श्यामसुंदर सेन रहे। यह एक द्विभाषीय समाचार पत्र था। एक पृष्ठ हिंदी और दूसरा बंगाली में प्रकाशित होता था। इस तरह यह पत्र लगभग 14 वर्षों तक छपता रहा। फिर 1857 आते–आते ईस्ट इंडिया के गोरे शासकों ने प्रेस पर कई नियंत्रण लगाए। बावजूद इसके अंग्रेजों की संगत से अभिव्यक्ति की आजादी में पत्रकारिता का शगल समाज में बनता–गढ़ता गया। उस दौर में कई प्रमुख समाचार पत्रों का उदय हुआ। इनमें 1838 में टाइम्स ऑफ इंडिया, 1865 में इलाहाबाद से पायनियर, 1875 में स्टेट्समैन, 1881 में लाहौर से ट्रिब्यून, 1889 में मद्रास से दैनिक के रूप में हिंदू और 1923 में हिंदुस्तान टाइम्स की शुरुआत हुई। अंग्रेजी की इस एलीट पत्रकारिता के बीच भारतीय भाषाओं में राजा राममोहन राय से सिलसिला शुरू हुआ। फिर 1860 में आनंद बाजार



पत्रिका, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी सहित अनेक विभूतियों ने सैकड़ों पत्र पत्रिकाएं निकालीं। उससे ऐसा माहौल बना कि अभिव्यक्ति की आजादी और पत्रकारिता का आग्रह, स्वतंत्रता का विचार रखने वालों में एक मशाल के रूप में स्थापित हो गया। आजादी से पहले भारतीय पत्रकारिता मिशन के ध्येय से युक्त थी। आजादी के बाद वह व्यावसायिकता में बदल गई। पत्रकारिता के स्वरूप में तेजी से बदलाव आया। मुद्रण तकनीक का अतिविकसित रूप दिखाई दिया। साथ ही विशेषज्ञता का पक्ष भी सुदृढ़ होता गया। दूसरी ओर राष्ट्रभाषा हिंदी होने के कारण हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के तीव्र गति से विकास की अपेक्षा की गई। उनमें एक वेगमय स्फूर्ति आई। स्वतंत्रता के साथ ही कई हिंदी दैनिकों ने जन्म लिया। कुछ अंग्रेजी समाचार पत्रों ने हिंदी के पत्र निकाले। इसी तरह 'नेशनल हेराल्ड' से 'नवजीवन' और 'इंडियन एक्सप्रेस' से 'जनसत्ता' आदि समाचार पत्र निकले। इसके अलावा 'अमर उजाला', 'नई दुनिया', 'दैनिक जागरण', 'दैनिक भास्कर' और 'पंजाब केसरी' आदि समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ।

कुल जमा बात यह कि भारतीय हिंदी पत्रकारिता तब पनपी जब भारतीयों में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ विरोध का स्वर तेज हुआ। ऐसे में हिंदी पत्रकारिता तत्कालीन ब्रिटिश हुकूमत की दमनकारी और साम्राज्यवादी नीतियों के विरोध की ही उपज है। भारतीय जनता पर उनकी जकड़बंदी, कुंठा, निराशा, बेबसी की अभिव्यक्ति की छटपटाहट है। राष्ट्रीय जनजागरण, अपने हक की लड़ाई का बयान है। इस तरह समकालीन विडंबनाओं, विभिन्न जटिलताओं, वर्जनाओं, त्रासद प्रतिक्रियाओं का मुकम्मल ब्योरा है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में इसकी शानदार और जीवंत रचनात्मक भूमिका रही है। पण्डित युगल किशोर शुक्ल ने 4 दिसम्बर 1827 के 'उदन्त मार्तण्ड' के अंक में अपनी कठिनाइयों का जिक्र करते हुए लिखा था, 'कठोर, परती जमीन को उर्वर बनाने के लिए उन्हें कितनी तपस्या करनी पड़ती थी। फिर भी प्रतिकूल परिस्थितियों ने उनकी साध को अधूरा ही समाप्त कर दिया।' हिंदी के आदि पत्रकारों ने हिंदी समाज के असहयोग की चर्चा अपनी व्यथा के साथ की थी। उसके लिए वे कठिन तपस्या कर रहे थे। उन्हीं का असहयोगात्मक रवैया उन्हें व्यथित कर देता था। पत्र को तैयार कर, छापकर ग्राहकों तक पहुंचाना और पढ़कर सुनाना पड़ता था। इस प्रकार ज्ञान की नई रोशनी के लिए अनुकूल माहौल तैयार करना उस काल के पत्रकारों की साधना थी। उस जमाने में पत्रकारिता से जुड़ना नाना प्रकार की यातना को न्योता देना था। इसके बावजूद हर्षित मन से लोग इस न्योते को स्वीकार करते थे।

'उदन्त मार्तण्ड' में ब्रज और खड़ी बोली की आधुनिक हिंदी



धनंजय कुमार
डिप्टी न्यूज एडिटर
भास्कर इंग्लिश, भोपाल
एलुमनाइ, हिंदी पत्रकारिता एवं
जनसंचार आरएलएसी, दिल्ली विवि

वह 2 फरवरी 2026 का दिन था। इंडिया टुडे पत्रिका से जुड़े पत्रकार पुष्यमित्र ने फेसबुक पर हिंदी के प्रमुख राष्ट्रीय अखबारों के पहले पन्ने जमा करके एक पोस्ट डाली। एक फरवरी को देश का बजट पेश होता है तो समाचार पत्रों में पहले पन्ने पर बजट की खबरें छपना स्वाभाविक था, लेकिन पुष्यमित्र ने अपनी पोस्ट के कैप्शन में क्या लिखा, पहले वह पढ़िए–'वह भी क्या दिन थे, जब बजट के अगले दिन के अखबारों के पहले पन्नों में ज्ञान और समीक्षा हुआ करती थी। तब लपक कर अखबार उठाने और पढ़ने का मन हुआ करता था। अब तो केवल सजावट और भर–भर कर तारीफें। बजट समीक्षा की कला में ऐसी गिरावट आई है कि क्या कहें। अब तो एक हेडिंग के अंदर झांकने का मन नहीं होता!'

पुष्यमित्र की इन बातों से आपको लग सकता है कि हिंदी के समाचार पत्र अब कितने बदल गए हैं। आखिर उन्हें क्यों पढ़ा जाए? तो क्यों न हम लौट कर चलें वहीं, जहां से हिंदी समाचार पत्रों की शुरुआत हुई।

हिंदी पत्रकारिता की यात्रा का प्रस्थान बिंदु है–उदन्त मार्तण्ड। इस समाचार पत्र को शुरू हुए करीब 200 साल हो चुके हैं और बंद हुए करीब 199 साल। फिर युगल किशोर शुक्ल ने ऐसा क्या किया था कि मात्र डेढ़ साल चलने वाला उनका यह अखबार दो शताब्दी बाद भी लोगों की जुबां पर है? इस सवाल का जवाब छुपा है भाषायी प्रयोग में। जब आप भाषा को लेकर वह करते हैं, जो पहले कभी न हुआ हो तो प्रयोग सफल हो या न हो, प्रयास सदियों तक याद रखे जाते हैं। 30 मई 1826 के अपने पहले अंक में 'उदन्त मार्तण्ड' ने जो लिखा उसे पढ़िए और जिस तरह से लिखा गया उस पर भी गौर करिए–'यह उदन्त मार्तण्ड अब पहले–पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी ओ पारसी ओ बंगाल में जो समाचार का कागज छपता है उनका सुख उन बोलियों के जानने और पढ़ने वालों को ही होता है और सब लोग पराए सुख से सुखी होते हैं। जैसे पराए धन धनी होना और अपनी रहते परायी आंख देखना वैसे ही जिस गुण में जिसकी पैठ न हो उसको उसके रस का मिलना कठिन ही है और हिंदुस्तानियों में बहुतेरे ऐसे हैं।' पाठकों को लग सकता है कि यह तो कितनी पुरानी भाषा है और अब हिंदी कितनी बदल चुकी है, लेकिन यह उस कालखंड की मॉर्डन हिंदी थी। 19वीं शताब्दी तक हिंदी वैसी नहीं थी जैसी हम आज देखते हैं। हिंदी के नाम गंगा–यमुना दोआब क्षेत्र से उपजने वाली ब्रज भाषा और खड़ी बोली थी। खड़ी बोली इसलिए क्योंकि यह सीधी और साफ बोली थी। साथ में आम बोलचाल की भाषा थी। दूसरी तरफ ब्रज भाषा ज्यादा मधुर और काव्यात्मक थी, लेकिन साहित्यिक दस्तावेजों तक ही सीमित थी।

पंडित युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' के अपने प्रयोग में ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों को मिला दिया। इसके अलावा उन्होंने संबोधन की शैली और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया। उदाहरण देखिए–'हिंदुस्तानियों! अब औरों पर आश्रित न रहो। अपने समाचार आप ही पढ़ो।' समाचार पत्र में छपे इस वाक्य में 'हिंदुस्तानियों!' प्रत्यक्ष संबोधन है, जो अंग्रेजी पत्रों में कम मिलता था। 'आश्रित' संस्कृतनिष्ठ शब्द है। 'आप ही पढ़ो' बोलचाल की सरल खड़ी बोली को दर्शाता है। हालांकि संस्कृतनिष्ठ प्रवृत्ति सबसे ज्यादा प्रशासनिक समाचारों में देखने को मिलती थी। 'कलकत्ता में न्यायाधीशों की सभा में यह निश्चय हुआ कि प्रजा के हितार्थ यह आज्ञा प्रकाशित की जाए।' 'न्यायाधीश', 'निश्चय', 'प्रजा', 'हितार्थ', 'आज्ञा', 'प्रकाशित' यह सभी संस्कृत मूल के शब्द हैं। हालांकि प्रशासनिक प्रसंगों में उर्दू–फारसी शब्दों (जैसे हुक्म, अदालत) से दूरी बनाई गई। विश्लेषक इसे हिंदी की स्वतंत्र पहचान बनाने के प्रयास के रूप में देखते हैं। इसके अलावा भाषा में मुहावरे और लोकधर्मिता का उदाहरण देखने को खूब मिला, जो कह सकते हैं कि आज भले उतना

कनेक्टिंग न लगे, लेकिन उस समय यह आम बोलचाल का हिस्सा था। इसके लिए पत्र में छपा यह वाक्य देखिए–'जो जन अपने ही देश की भाषा न जानै, सो और क्या जानै?' 'जानै' ब्रज–अवधी प्रभाव को दर्शाता है।

साथ में प्रश्नात्मक नैतिक शैली है। यहां भाषा साहित्यिक ब्रज से गद्यात्मक खड़ी बोली की तरफ जाती दिखाई देती है। हालांकि, जिन भाषायी प्रयोगों पर हम गौर कर रहे हैं, उससे भी ज्यादा रोचक 'उदन्त मार्तण्ड' की लेखन शैली रही। आज के दौर में उस समय की लिखावट को पढ़ते हुए पाठकों को ऐसा लग सकता है कि खबर नहीं बल्कि कोई कहानी लिखने की कोशिश होती थी। एक खबर का यह हिस्सा पढ़िए–'जैसा करम तैसा फल। सुनने में आया कि इन दिनों में टकसाल के चाकर ने जो उस टकसाल में बहुत दिनों से पलता था एक दिन सोना चुराया सो वहीं के किसी के हाथों से पकड़ा गया ओ तुर्त पुलिस में भेजा गया फिर तजवीज भए पर अपने किये का फल पचीस बेंत पाया।' यह भले ही एक छोटी और रोचक कहानी जैसी लगे, लेकिन सच में यह भारत के पहले हिंदी समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' से लिए गए एक समाचार का अंश है।

इससे पहले हिंदी पत्रकारिता में यह किसी ने नहीं किया था। आखिर क्यों यह समाचार पत्र मात्र 553 दिन या 18 महीनों में बंद हो गया? इसके मुख्यत: दो कारण थे–पाठकों की संख्या बहुत कम थी। कलकत्ता में हिंदी बोलने वाले लोग सीमित थे। इसे हिंदी के मुख्य क्षेत्र उत्तर भारत तक पहुंचाना मुश्किल था। डाक का खर्च काफी ज्यादा आता था और सरकार ने वित्तीय सहायता देने से मना कर दिया था। यह किताब के आकार का था। साइज था 12 बाई 8 इंच। इसके कलकत्ता से प्रकाशित होने का कारण यह था कि पेशे से वकील पंडित युगल किशोर शुक्ल भले कानपुर से थे, लेकिन रहते कलकत्ता में थे। साथ ही साहित्य, प्रकाशन और पाठक के स्तर पर बंगाल देश के अन्य हिस्सों की तुलना में कहीं ज्यादा समृद्ध था। इसके पहले अंक की 500 प्रतियां छपी थीं। 'उदन्त मार्तण्ड' के बंद होने के बाद हिंदी का पहला दैनिक समाचार पत्र आने में 28 साल और लग गए। 'समाचार सुधावर्षण' पहले दैनिक हिंदी समाचार पत्र के रूप में जून 1854 में शुरू हुआ। संपादन श्याम सुंदर सेन ने किया था। हालांकि इसे भी पूरी तरह से हिंदी का पत्र नहीं कहा जा सकता। हर अंक में छह से आठ पन्ने होते थे, जिसमें आधे से ज्यादा पृष्ठ हिंदी को आवंटित थे। साथ में बंगाली खंड भी आता था। बंगाली खंड में मुख्य रूप से व्यावसायिक समाचार और विज्ञापन को जगह दी जाती थी।

इस तरह हिंदी समाचार पत्रों की यात्रा में 'उदन्त मार्तण्ड' 200 वर्षों बाद भी इसलिए मील का पत्थर है क्योंकि यह न होता तो शायद हिंदी समाचार पत्र का विचार और देर से होता। इसका परिणाम क्या होता कह पाना मुश्किल है, लेकिन इतना तय है कि हिंदी भाषा अपना एक कालखंड खो देती।



शुरुआती हिंदी समाचार पत्रों में भाषायी प्रयोग



योगेश प्रताप
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
तृतीय वर्ष

हिंदी पत्रकारिता अपने सफर के 200 गौरवशाली वर्ष पूरे करने की दहलीज पर खड़ी है। इन दो सदियों में इसने बहुत उतार-चढ़ाव देखे हैं। यह यात्रा केवल सूचनाओं के आदान-प्रदान की कहानी मात्र नहीं है। यह हमारे समाज और उसकी बदलती जुबान का आइना भी है। 30 मई 1826 को कोलकाता से 'उदन्त मार्तण्ड' का पहला अंक निकला था। पंडित युगल किशोर शुक्ल ने जिस भाषायी चेतना का बीज बोया था, वह आज एक विशाल वट वृक्ष बन चुका है। तब से लेकर आज के डिजिटल दौर तक हिंदी पत्रकारिता ने खुद को कई बार बदला है। इस पूरी यात्रा में सबसे बड़ा बदलाव भाषा के स्तर पर आया है। आज के हिंदी अखबार अब केवल शुद्ध हिंदी तक सीमित नहीं रह गए हैं। यह द्विभाषीय और कई बार त्रिभाषीय स्वरूप ले चुके हैं। इसमें हिंदी का ढांचा है और अंग्रेजी की शब्दावली है। साथ ही इसमें आंचलिक बोलियों का अपना एक अलग ही पुट देखने को मिलता है। आज के दौर में भाषायी शुद्धता के मुकाबले व्यावहारिकता को अधिक महत्व दिया जा रहा है। अखबारों में अलग-अलग भाषाओं की अब पत्रकारिता की एक नई शैली बन चुकी है। यदि हम इतिहास को देखें तो हिंदी पत्रकारिता का शुरुआती रूप भी वैसा नहीं था, जैसा हम आज सोचते हैं। पहले के अखबारों पर ब्रजभाषा और भारी-भरकम संस्कृतनिष्ठ शब्दों का असर था। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद के 'बनारस अखबार' में तो उर्दू मिली हुई हिंदी का खूब प्रयोग होता था। यानी हिंदी के जिस विशुद्ध रूप की कल्पना हम करते हैं, वह गाहे-बगाहे वैसी थी ही नहीं। हिंदी समाचार पत्रों में द्विभाषीय और त्रिभाषायी प्रयोग कोई आधुनिक विसंगति नहीं बल्कि एक सुचिंतित और सुव्यवस्थित भाषायी विकास की प्रक्रिया है। इससे यह साफ होता है कि हिंदी का वह विशुद्ध रूप हमेशा से लचीला रहा है। वह समय के साथ दूसरी भाषाओं को खुद में समेटता रहा है। हिंदी समाचार पत्रों का आज का बहुभाषी रूप वास्तव में एक सोची-समझी विकास प्रक्रिया का हिस्सा है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जब नई चाल की ढली हुई हिंदी की बात की तो उनका उद्देश्य भाषा को जटिलता से निकालकर जनसामान्य तक पहुंचाना था। उन्होंने उर्दू और अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को हिंदी में जगह दी। इसके बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से भाषा को संवारा। उन्होंने हिंदी को अनुशासित किया, लेकिन आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिए अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से परहेज नहीं किया। वह अक्सर कठिन शब्दों के साथ कोष्ठक में अंग्रेजी शब्द लिख देते थे। यह वास्तव में आधुनिक द्विभाषीय मॉडल की एक शुरुआती झलक थी। बाबू श्यामसुंदर दास का हिंदी शब्दसागर संग्रह न केवल हिंदी को प्रतिष्ठित करने में सहायक रहा बल्कि यह हिंदी साहित्य के इतिहास, शब्दार्थ और भाषा की मानक रूपरेखा तय करने का मूल आधार भी है। इसके बाद महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तानी के विचार को पत्रकारिता का मूल मंत्र बनाया। इससे हिंदी, उर्दू और स्थानीय बोलियों का एक त्रिकोणीय समन्वय स्थापित हुआ। इन महापुरुषों का सामूहिक योगदान ही वह आधारशिला है, जिस पर आज की आधुनिक हिंदी पत्रकारिता खड़ी है। आज के समाचार पत्रों में दिखने वाला भाषा का बहुआयामी रूप इन्हीं ऐतिहासिक प्रयासों का विस्तार है, जो भाषायी सीमाओं को लांघकर सूचनाओं को अति समावेशी और प्रभावी बनाता है। पत्रकारिता में भाषायी बदलाव का सबसे बड़ा टर्निंग प्वाइंट साल 1991 का आर्थिक उदारीकरण है। रॉबिन जेफ्री ने अपनी किताब इंडियाज न्यूजपेपर रिवोल्यूशन में इस बारे में विस्तार से लिखा है। जब भारतीय बाजार खुला तो विदेशी कंपनियां यहां आईं। उन्हें अपना माल बेचने के लिए एक ऐसी भाषा चाहिए थी, जो सीधे युवाओं तक पहुंचे। मिशन से प्रोफेशन बनने की इस प्रक्रिया में अखबारों ने उस भाषा को अपनाया, जिसे हिंग्लिश कहा जाता है। उन्हें युवाओं से जुड़ने

के लिए ऐसी भाषा की तलाश थी जो बोझिल संस्कृतनिष्ठ न होकर रोजमर्रा की बातचीत का हिस्सा हो। 1990 के दशक के आखिर में 'नवभारत टाइम्स', 'दैनिक भास्कर' और 'दैनिक जागरण' जैसे अखबारों ने इस बदलाव को बड़े स्तर पर लागू किया। उन्होंने चिकित्सालय जैसे शब्दों की जगह हॉस्पिटल को चुना। आज सुप्रीम कोर्ट, डेडलाइन और टैक्स स्लैब जैसे शब्द हिंदी का ही हिस्सा बन गए हैं। एक अध्ययन के मुताबिक, आज प्रमुख हिंदी अखबारों के पहले पन्ने पर करीब 20 प्रतिशत शब्द अंग्रेजी के होते हैं। खेल और व्यापार के पन्नों पर तो यह आंकड़ा 40 प्रतिशत तक पहुंच जाता है। अब क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों–जैसे बवाल या ताबड़तोड़ को भी अखबारों में सम्मानजनक जगह मिल रही है। इस बदलाव के अग्रदूत के रूप में 'नवभारत टाइम्स' को माना जाता है। 2000 के दशक की शुरुआत में 'नवभारत टाइम्स' ने अपनी भाषा नीति में क्रांतिकारी बदलाव कर हिंग्लिश को खुले तौर पर अपनाया। साथ ही यह तर्क भी दिया कि अखबार को वैसी ही भाषा बोलनी चाहिए जैसी लोग घर या दफ्तर में बोलते हैं। इसके अलावा 'दैनिक भास्कर' और 'दैनिक जागरण' जैसे हिंदी अखबारों ने भी बहुभाषायी प्रयोग शुरू किया। इस भाषायी बदलाव का व्यावहारिक पक्ष यह है कि भाषा बहते हुए पानी की तरह है। पानी की तरह भाषा भी अपना रास्ता खुद बनाती है। वरिष्ठ पत्रकार मृणाल पांडे और प्रभाष जोशी ने भी माना कि अखबार का मुख्य काम संवाद करना है। यदि कठिन भाषा के कारण पाठक बात समझ ही न पाए तो अखबार का कोई मतलब नहीं रह जाता।

आज समाचार पत्रों में हो रहा द्विभाषीय–त्रिभाषायी प्रयोग न तो पूरी तरह खारिज करने योग्य है और न ही पूरी तरह स्वीकार करने योग्य। तकनीकी शब्दों और ग्लोबल कॉन्सेप्ट्स के लिए अंग्रेजी का सहारा लेना मजबूरी है और जरूरत भी। इंटरनेट, मोबाइल और सेंसेक्स जैसे शब्दों का कोई सरल हिंदी विकल्प नहीं है। लेकिन यहां एक सावधानी बरतनी भी जरूरी है। जहां हमारे पास सहज और सरल हिंदी शब्द मौजूद हैं, वहां अंग्रेजी थोपना ठीक नहीं है। एक सशक्त लोकतंत्र के लिए अखबार की भाषा का समझ में आना जरूरी है, लेकिन भाषा का इतना भी सरलीकरण नहीं होना चाहिए कि वह अपनी पहचान खो दे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था–'हिंदी को दूसरी भाषाओं के शब्दों से परहेज नहीं करना चाहिए, लेकिन उसे अपना मुहावरा नहीं छोड़ना चाहिए।' पत्रकारिता का उद्देश्य केवल खबर देना नहीं होता। वह समाज की भाषा और संस्कृति को भी गढ़ती है। आज डिजिटल मीडिया के दौर में चुनौतियां और भी बढ़ गई हैं। अब पाठक के पास सूचनाओं के अनगिनत स्रोत हैं। ऐसे में अखबारों को अपनी विश्वसनीयता और भाषायी गरिमा को बचाए रखना होगा। हिंदी पत्रकारिता के 200 साल हमें सिखाते हैं कि भाषा की ताकत उसके लचीलेपन में है। वह जितनी ज्यादा समावेशी होगी, उतनी ही अधिक प्रभावी बनेगी।



हिंदी और बांग्ला के बीच सेतु बना हिंदी का पहला दैनिक 'समाचार सुधावर्षण'



दिव्या
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
तृतीय वर्ष

इतिहास के पन्नों को जब पलटते हैं तो पाते हैं कि किसी भी समाज की चेतना उसकी भाषा और अभिव्यक्ति में छिपी होती है। उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दौर में कोलकाता ब्रिटिश भारत के राजनीतिक केंद्र के साथ बौद्धिक और सांस्कृतिक हलचलों का केंद्र था। उस समय अंग्रेजी और बांग्ला के अनेक समाचार पत्र निकलते थे, लेकिन उत्तर भारत में बड़े पैमाने पर बोली जाने वाली हिंदी भाषा का कोई समाचार पत्र नहीं था। वैसे भारत में पत्रकारिता का जन्म एक मिशन के रूप में हुआ था। उसका उद्देश्य सूचना देने के साथ सोए राष्ट्र को जगाना था। इस यात्रा की नींव रखने का श्रेय पंडित युगल किशोर शुक्ल को जाता था, जिन्होंने 30 मई 1826 को हिंदी के पहले साप्ताहिक पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन शुरू किया। वैसे यह पत्र केवल डेढ़ साल ही चल पाया, लेकिन इसने वह बीज बोया था जो आगे चलकर वट वृक्ष बनने वाला था। शुक्लजी ने अंतिम अंक में मार्मिक शब्दों में लिखा था–'आज दिवस लौं उग चुक्यौ मार्तण्ड उदंत, अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अंत।'

साप्ताहिक पत्रों के बाद समाज की जरूरतें बढ़ने लगीं। प्रतिदिन की घटनाओं से रूबरू होने की जिज्ञासा तीव्र हुई। इसी आवश्यकता ने जन्म दिया हिंदी के पहले दैनिक समाचार पत्र को। हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में 8 जून 1854 का दिन स्वर्ण अक्षरों में अंकित है, जब कोलकाता से ही 'समाचार सुधावर्षण' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके संपादक और प्रकाशक श्याम सुंदर सेन थे। बांग्लाभाषी होते हुए भी उन्हें हिंदी से प्रेम था। यह पत्र हिंदी और बांग्ला भाषा के बीच सेतु की तरह था। यह द्विभाषी पत्र था। इसके पहले दो पृष्ठ हिंदी में होते थे और बाकी दो पृष्ठ बांग्ला में। उस दौर में किसी दैनिक पत्र का निकलना बड़ा साहसिक प्रयोग था। श्याम सुंदर सेन ने अपनी इस पहल से साबित कर दिया कि हिंदी केवल साहित्य की भाषा नहीं है बल्कि वह प्रतिदिन की राजनीति, व्यापार और सामाजिक विमर्श की भाषा भी बन सकती है। 'समाचार सुधावर्षण' ने हिंदी पत्रकारिता को एक नई दिशा दी। पाठकों को सरल और स्पष्ट अभिव्यक्ति से परिचित कराया। यह पत्र रविवार को छोड़कर प्रतिदिन निकलता था। श्याम सुंदर सेन की पत्रकारिता में सूचनाओं के साथ उसमें मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों की झलक मिलती थी। उसमें व्यापारिक समाचारों, जहाजों के आगमन और माल के विवरण के साथ समाज सुधार पर बुद्धिजीवियों के विचार और टिप्पणियां छपती थीं। पत्र समय-समय पर तत्कालीन सरकार को जनता के प्रति उसके कर्तव्यों की याद दिलाने और चेतावनी देने से भी पीछे नहीं हटता था। अपनी इसी निर्भीकता और प्रगतिशील विचारों के कारण पत्र को अनेक कष्ट भी सहने पड़े।

हिंदी पत्रकारिता का यह प्रारंभिक दौर असल में भारतीय पुनर्जागरण का काल था। 'समाचार सुधावर्षण' ने अंग्रेजों के अनैतिक आचरण की बेबाक आलोचना की, जो उस समय के दमनकारी माहौल में एक मिसाल थी। पत्रकारिता का धर्म ही सत्य को सामने लाना और समाज को दिशा देना है। उस समय के संपादकों के लिए पत्रकारिता व्यवसाय नहीं मिशन थी। 'समाचार सुधावर्षण' की बनावट और उसके प्रस्तुतीकरण में मानवीय समझ और रचनात्मकता का संगम था। पत्र के हर पृष्ठ को चार कॉलम में बांटा गया था। शुरू में इसका अग्रलेख पहले पृष्ठ पर छपता था। बाद में विज्ञापनों की संख्या बढ़ने लगी तो इसे दूसरे या तीसरे पृष्ठ पर स्थान दिया जाने लगा। उस समय पत्र का मासिक दो रुपए और सालाना चौबीस रुपए मूल्य था। श्याम सुंदर सेन ने अपनी लेखनी से ब्रिटिश हुकूमत को परेशान कर दिया, लेकिन यह यात्रा फूलों की सेज नहीं थी। हिंदी पत्रकारिता को कदम-कदम पर संघर्ष करना पड़ा। एक ओर सरकारी दमन और सेंसरशिप थी तो दूसरी ओर वित्तीय संकट और पाठकों की कमी। ब्रिटिश प्रशासन ने हिंदी पत्रों को वे रियायतें और

डाक सुविधाएं नहीं दीं, जो अंग्रेजी पत्रों को प्राप्त थीं। युगल किशोर शुक्ल ने सरकार से वित्तीय सहायता की अपील की थी, लेकिन उनकी मांगों को अनसुना कर दिया गया। श्याम सुंदर सेन को भी अपनी निर्भीकता की भारी कीमत चुकानी पड़ी। इसके बावजूद ये पत्रकार कलम की आबरू बचाने के लिए हर जोखिम उठाने को तैयार रहते थे।



हिंदी दैनिक समाचार पत्रों के आगमन ने भाषा को एक नया संस्कार दिया। पहले की भाषा अक्सर जटिल और संस्कृतनिष्ठ होती थी, पर श्याम सुंदर सेन और उनके बाद के संपादकों ने ऐसी भाषा विकसित करने का प्रयास किया जो आम आदमी के दिल तक पहुंचे। 'समाचार सुधावर्षण' की भाषा में सहज प्रवाह था। हिंदी पत्रकारिता ने शब्दों के साथ विचारों को भी एक लय दी। बाद के दौर में भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे मनीषियों ने हिंदी भाषा को उसका आधुनिक और परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया। भारतेंदु ने पत्रकारिता के माध्यम से जनता में उदारवादी और लोकतांत्रिक चेतना का विकास किया। उन्होंने 1868 में 'कविवचन सुधा' और 1873 में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से स्वदेशी आंदोलन की नींव रखी। उनकी पत्रकारिता में व्यंग्य, रचनात्मकता और मानवीय संवेदनाओं का गहरा पुट था। उन्होंने समाज सुधार और राष्ट्रीय गौरव के विषयों पर ऐसी प्रभावशाली लेखनी चलाई कि जनता उनके साथ जुड़ती चली गई। इसी तरह महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी गद्य की शैली को मानक बनाया और साहित्यिक आलोचना का विकास किया।

हिंदी दैनिक समाचार पत्रों ने स्वाधीनता संग्राम में मशाल की भूमिका निभाई। अंग्रेजों के 'फूट डालो और राज करो' की नीति का पर्दाफाश करने में हिंदी मीडिया ने बड़ी भूमिका अदा की। 1857 की क्रांति के दौरान 'पयामे आजादी' जैसे पत्रों ने जनता में देशभक्ति की आग जला दी थी। फिर बीसवीं सदी की शुरुआत में हिंदी पत्रकारिता एक जन आंदोलन का रूप ले चुकी थी। 1913 में गणेश शंकर विद्यार्थी ने कानपुर से 'प्रताप' निकालकर क्रांतिकारी पत्रकारिता की नई परिभाषा लिखी। 'प्रताप' समाचार पत्र होने के साथ किसानों और मजदूरों की आवाज था। विद्यार्थीजी का दफ्तर क्रांतिकारियों का घर माना जाता था। इसी तरह बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 1920 में 'आज' के माध्यम से निर्भीक और निष्पक्ष पत्रकारिता के नए मानक स्थापित किए। पराड़करजी ने महात्मा गांधी के विचारों और सिद्धांतों को अपने पत्र के माध्यम से घर-घर पहुंचाया। महात्मा गांधी ने स्वयं पत्रकारिता को सेवा का माध्यम बनाया। उन्होंने 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' और 'हरिजन' के माध्यम से समाज के अंतिम व्यक्ति की पीड़ा को स्वर दिया। गांधीजी का मानना था कि पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य लोक सेवा होना चाहिए न कि आजीविका का साधन। उन्होंने अपने पत्रों में कभी विज्ञापन नहीं छापे, फिर भी उनकी प्रसार संख्या बहुत अधिक थी। आज के व्यावसायिक युग में जब हम पीछे मुड़कर पहले हिंदी दैनिक को देखते है तो उसकी नैतिकता और मानवीय बोध हमें अचंभित कर देता है। उस समय के संपादकों के लिए सत्य और लोक कल्याण सर्वोपरि थे। श्याम सुंदर सेन ने अपनी पत्रकारिता में सनसनी फैलाने की कोशिश नहीं की। वह तथ्यों की गहराई में जाकर विश्लेषण करते थे। पंडित मदन मोहन मालवीय ने 'हिंदोस्थान' और 'अभ्युदय' के माध्यम से पत्रकारिता को एक वैज्ञानिक कला के रूप में



विकसित किया। वे लेखकों को मानदेय देने की परंपरा शुरू करने वाले अग्रदूत थे, ताकि प्रतिभा को प्रोत्साहन मिल सके।

हिंदी पत्रकारिता का मूल स्वभाव राष्ट्रीयता और प्रेम रहा है। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने 1920 में 'मूकनायक' निकालकर दलितों और वंचितों की आवाज को पहली बार पत्रकारिता के मंच पर मजबूती से खड़ा किया। उनकी पत्रकारिता का उद्देश्य सामाजिक जागरण था। 'समाचार सुधावर्षण' से शुरू हुई यह यात्रा आज डिजिटल पोर्टलों और 24 घंटे वाले समाचार चैनलों तक पहुंच गई है। भारत आज दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा समाचार पत्र का बाजार है। हिंदी दैनिक पत्रों की संख्या और प्रसार आज अंग्रेजी के मुकाबले कई गुना बढ़ चुकी है। 'दैनिक जागरण', 'दैनिक भास्कर' और 'अमर उजाला' जैसे पत्र आज दुनिया के सबसे अधिक पढ़े जाने वाले पत्रों में शामिल हैं, लेकिन इस सफलता के साथ कुछ गंभीर सवाल भी खड़े हुए हैं। बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 1925 में एक भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में अखबारों के मालिक बड़े-बड़े धनवान लोग होंगे, अखबार रंगीन और सुंदर होंगे, उनकी प्रसार संख्या लाखों में होगी, लेकिन वे 'प्राणहीन' होंगे। आज विज्ञापन और टीआरपी की दौड़ में वह मानवीय बोध कहीं खोता हुआ दिखाई दे रहा है, जो श्याम सुंदर सेन और गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता की आत्मा थी। सनसनीखेज खबरें और एजेंडा पत्रकारिता ने विश्वसनीयता के सामने संकट खड़ा कर दिया है।

उस समय के पत्रकारों ने अपनी कलम को स्याही से नहीं बल्कि अपने पसीने और खून से भिगोकर लिखा था। आज जब हम हिंदी पत्रकारिता के 200 वर्षों का जश्न मना रहे हैं तो हमें उस मूल भावना को याद करना होगा जिसके लिए 'समाचार सुधावर्षण' खड़ा हुआ था। हमें पत्रकारिता की आत्मा को पुनर्जीवित करने का संकल्प लेना होगा, सूचना के भीषण शोर में हमें उस 'सत्य' की आवाज को फिर से खोजना होगा, जो लोक कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हो। पत्रकारिता केवल एक पेशा नहीं है। यह समाज के प्रति एक जवाबदेही है। जिस तरह 'उदन्त मार्तण्ड' और 'समाचार सुधावर्षण' ने अपने समय के अंधेरे को चीरकर प्रकाश फैलाया था, उसी तरह आज के पत्रकारों को भी मानवीय मूल्यों और संवेदनशीलता की मशाल जलाए रखनी होगी। शब्दों की ताकत उनकी उम्र में नहीं बल्कि उन लोगों के साहस में होती है, जो उन्हें छापने का जोखिम उठाते हैं। हिंदी पत्रकारिता का भविष्य तभी उज्ज्वल होगा जब हम अपनी जड़ों से जुड़े रहेंगे और उन आदर्शों को नहीं भूलेंगे, जो श्याम सुंदर सेन, गणेश शंकर विद्यार्थी और महात्मा गांधी ने हमारे सामने रखे थे। आज का हिंदी मीडिया चाहे कितना भी विशाल और तकनीकी रूप से सक्षम क्यों न हो जाए, उसकी सार्थकता तभी है, जब वह समाज के हर तबके की आवाज बने और मानवीय गरिमा की रक्षा करे। यही उस पहले हिंदी दैनिक और उसके संघर्षपूर्ण पत्रकारिता के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हिंदी पत्रकारिता का सूर्योदय और शुरुआती संघर्ष



विष्णु धनगर
बीए (ऑनर्स) इतिहास
तृतीय वर्ष

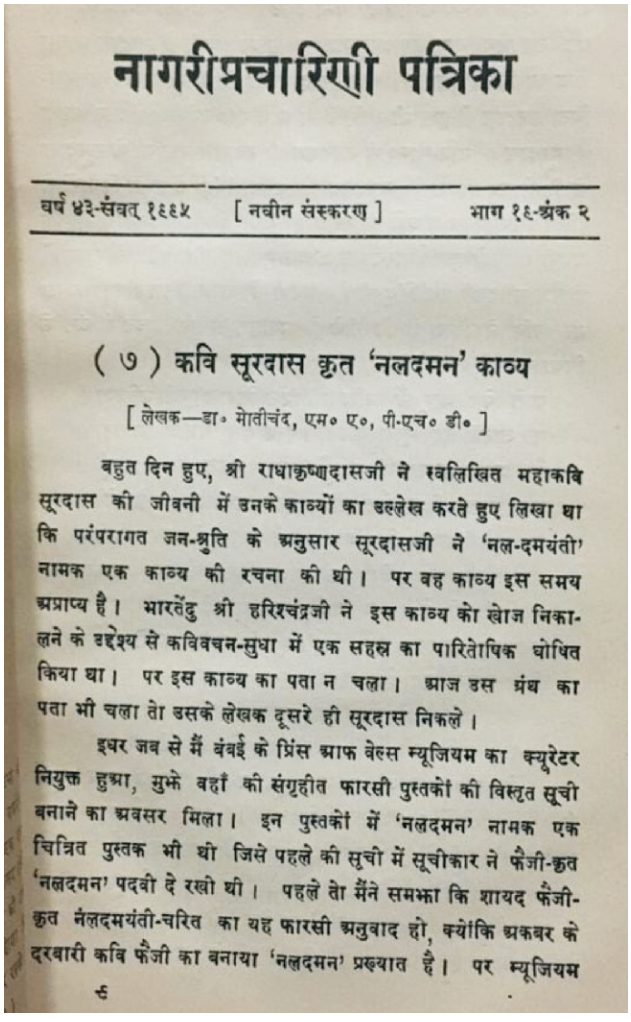
आज भी बड़ी संख्या में लोगों की सुबह की चाय समाचार पत्र के साथ होती है। दरवाजे पर हॉकर द्वारा डाले गए पत्र की हल्की सी आवाज केवल पत्र आने की सूचना नहीं होती। वह देश-दुनिया की हलचल का हमारे घर तक पहुंचने का जीवंत संकेत होती हैं। समाचार पत्र केवल खबरों का संग्रह नहीं बल्कि समाज का दर्पण, विचारों का मंच और जागरूकता का माध्यम है। वह पाठकों को बताता है कि उनके आसपास क्या घट रहा है? देश किस दिशा में बढ़ रहा है? दुनिया में कौन सी हलचल चल रही है? क्या यह परंपरा हमेशा से ऐसी थी? अगर हम इतिहास के पन्नों को पलटें तो पाएंगे कि भारत में पत्रकारिता की शुरुआत हिंदी से नहीं, अंग्रेजी भाषा से हुई थी। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभाव बढ़ रहा था। उस समय सूचना का आदान-प्रदान मुख्यतः अंग्रेज अधिकारियों और व्यापारिक वर्ग तक सीमित था। इसी संदर्भ में 1780 में कोलकाता से 'बंगाल गजट' का प्रकाशन हुआ, जिसे भारत का पहला समाचार पत्र माना जाता है। इसकी लगभग 200 प्रतियां छपती थीं। इसे ज्यादातर अंग्रेज अधिकारी ही पढ़ते थे। इसके बाद 1784 में 'कलकत्ता गजट', 1785 में 'मद्रास कूरियर', 1789 में 'बॉम्बे हेराल्ड' और 1790 में 'बॉम्बे कूरियर' जैसे पत्र सामने आए। इन पत्रों की प्रतियां सामान्यतः 300 से 500 के बीच होती थीं। इनका मुख्य उद्देश्य औपनिवेशिक प्रशासन, व्यापारिक हितों और यूरोपीय समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। आम भारतीय जनता, विशेषकर हिंदी भाषी समाज इन पत्रों से सीधा जुड़ाव महसूस नहीं करता था। यहां यह समझना आवश्यक है कि पत्रकारिता का आरंभ तो हो चुका था, परंतु भाषा और जनता के बीच अभी दूरी बनी हुई थी।


प्रताप
सामाहिक पत्र

समाचार पत्र का वास्तविक महत्व तभी बढ़ता है जब वह जनता की भाषा में जनता की बात कहे। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक भारत में साक्षरता दर बहुत कम थी। लगभग पांच से सात प्रतिशत लोग ही पढ़-लिख सकते थे। 1822 में बंबई से 'बॉम्बे समाचार' का प्रकाशन हुआ, जो गुजराती भाषा का पत्र था। इसकी शुरुआत में लगभग 500 प्रतियां छपती थीं। धीरे-धीरे यह संख्या एक हजार से अधिक हो गई। यह पत्र व्यापारिक समाचार, बंदरगाह की जानकारी और सामाजिक विषयों को प्रकाशित करता था। यह इस बात का प्रमाण था कि भारतीय भाषाओं में भी पत्रकारिता का विस्तार संभव है। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन हुआ। प्रति सप्ताह लगभग 100 से 150 प्रतियां छपती थीं। वार्षिक सदस्यता शुल्क लगभग दो रुपए थी। इसमें सरकारी सूचनाएं, सामाजिक घटनाएं, कृषि समाचार और नैतिक लेख प्रकाशित होते थे। डाक शुल्क अधिक होने के कारण दूरदराज के पाठकों तक इसे पहुंचाना कठिन था। आर्थिक सहायता न मिलने के कारण 1827 में इसका प्रकाशन बंद हो गया, परंतु इसका महत्व इस तथ्य में है कि इसने हिंदी को सार्वजनिक अभिव्यक्ति की भाषा बनाने की नींव रखी। इसी कड़ी में 1845 में 'बनारस अखबार' का प्रकाशन हुआ। इसमें धार्मिक समाचार, प्रशासनिक घोषणाएं और स्थानीय घटनाएं शामिल थीं। 1854 में 'समाचार सुधावर्षण' नामक दैनिक पत्र शुरू हुआ, जिसे हिंदी का पहला दैनिक माना जाता है। इसकी लगभग 400 से 500 प्रतियां प्रतिदिन छपती थीं। इसमें देश-विदेश के समाचार, व्यापारिक दरें और सामाजिक विषय शामिल होते थे।

1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेज सरकार ने

प्रेस पर नियंत्रण कड़ा कर दिया। 1867 में प्रेस और पंजीकरण अधिनियम लागू किया गया, जिसके तहत हर समाचार पत्र का सरकारी पंजीकरण कराना अनिवार्य हो गया। 1868 में भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन शुरू किया। इसकी लगभग 500 से 800 प्रतियां नियमित रूप से वितरित होती थीं। इसमें साहित्य, समाज सुधार और राष्ट्रीय भावना से जुड़े लेख प्रकाशित होते थे। 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' निकली, जिसमें महिला शिक्षा, सामाजिक कुरीतियों और आधुनिक विचारों पर चर्चा होती थी। 1878 में 'भारत मित्र' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जिसकी लगभग एक हजार प्रतियां छपती थीं। इसी वर्ष अंग्रेज सरकार ने वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट लागू किया, जिसके तहत भारतीय भाषाओं के पत्रों पर निगरानी रखी जाती थी। 1880 के बाद हिंदी पत्रकारिता का विस्तार तेजी से हुआ। 1883 में 'हिन्दोस्तान' नामक पत्र प्रारंभ हुआ, जिसमें राष्ट्रीय आंदोलन और राजनीतिक समाचार



नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ४२-संवत् १९९५ [नवीन संस्करण] भाग १९-अंक २

(७) कवि सूरदास कृत 'नलदमन' काव्य

[लेखक—डा० मोतीचंद, एम० ए०, पी-एच० डी०]

बहुत दिन हुए, श्री राधाकृष्णदासजी ने स्वलिखित महाकवि सूरदास की जीवनी में उनके काव्यों का उल्लेख करते हुए लिखा था कि परंपरागत जन-श्रुति के अनुसार सूरदासजी ने 'नल-दमयंती' नामक एक काव्य की रचना की थी। पर वह काव्य इस समय अप्राप्य है। भारतेंदु श्री हरिश्चंद्रजी ने इस काव्य को खोज निकालने के उद्देश्य से कविवचन-सुधा में एक सहस्र का पारितोषिक घोषित किया था। पर इस काव्य का पता न चला। आज उस ग्रंथ का पता भी चला तो उसके लेखक दूसरे ही सूरदास निकले।

इधर जब से मैं बंबई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम का क्यूरेटर नियुक्त हुआ, मुझे वहाँ की संगृहीत फारसी पुस्तकों की विस्तृत सूची बनाने का अवसर मिला। इन पुस्तकों में 'नलदमन' नामक एक चित्रित पुस्तक भी थी जिसे पहले की सूची में सूचीकार ने फैजी-कृत 'नलदमन' पदवी दे रखी थी। पहले तो मैंने समझा कि शायद फैजी-कृत नलदमयंती-चरित का यह फारसी अनुवाद हो, क्योंकि अकबर के दरबारी कवि फैजी का बनाया 'नलदमन' प्रख्यात है। पर म्यूजियम

६

प्रमुख थे। 1890 में 'हिन्दी बंगवासी' निकला, जिसकी लगभग 1500 से 2000 प्रतियां छपती थीं। इसमें स्वदेशी आंदोलन, शिक्षा और सामाजिक सुधार पर लेख प्रकाशित होते थे। 1896 में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का श्रीगणेश हुआ, जिसका उद्देश्य देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा का प्रचार करना था। इस पत्रिका के सम्पादक श्याम सुन्दर दास, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, कालीदास और राधाकृष्ण दास थे। 1900 तक भारत में हिंदी के लगभग 50 से अधिक समाचार पत्र प्रकाशित हो रहे थे। 1881 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर लगभग आठ प्रतिशत थी, जो 1901 तक बढ़कर 10 प्रतिशत हो गई। इस वृद्धि के साथ समाचार पत्रों की पाठक संख्या भी हजारों में पहुंच गई।

समय के साथ भारतीय पत्रकारिता ने नई दिशा पकड़ी। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कई प्रभावशाली पत्रों ने ब्रिटिश नीतियों की आलोचना कर राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया। 1878 में मद्रास से 'द हिंदू' नामक एक प्रमुख पत्र का प्रकाशन हुआ, जिसने गंभीर पत्रकारिता की परंपरा स्थापित की। बाद में अन्य पत्रों ने भी सार्वजनिक विमर्श को आकार दिया। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारतीय पत्रकारिता धीरे-धीरे प्रशासनिक सूचना से आगे बढ़कर सामाजिक और राजनीतिक चेतना का माध्यम बनी। हिंदी पत्रकारिता भी इसी प्रवाह का हिस्सा बनी। प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद उसने शिक्षा, सामाजिक सुधार और स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज जब हम आधुनिक तकनीक के माध्यम से रात की खबरें सुबह अपने हाथ में पाते हैं तो यह समझना आवश्यक है कि यह व्यवस्था लगभग दो शताब्दियों के विकास का परिणाम है। कभी खबरों को पहुंचने में पांच से सात दिन लगते थे। कभी 200 प्रतियां ही छप पाती थीं। कभी आर्थिक अभाव के कारण प्रकाशन बंद करना पड़ता था। फिर भी पत्रकारिता की धारा रुकी नहीं। इसलिए जब हम आज सुबह अखबार पढ़ते हैं तो वह केवल सूचना का साधन नहीं बल्कि 1780 से 1900 तक के संघर्ष, विकास और जागरण की एक जीवित परंपरा का हिस्सा होता है। 'उदन्त मार्तण्ड' भले ही अन्य भाषाओं के पत्रों के बाद आया, पर हिंदी भाषा के इतिहास में उसका स्थान प्रथम और गौरवपूर्ण है, क्योंकि उसी से हिंदी पत्रकारिता की यात्रा प्रारंभ हुई है।

शब्दों की जिम्मेदारी और समाज का विवेक



आस्था त्रिपाठी
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
तृतीय वर्ष

हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता को केवल पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास मानना उसे छोटा करके देखना देना होगा। यह केवल छपी सामग्री का एक क्रम नहीं है। यह उस प्रक्रिया का नाम है, जिसमें भाषा ने अपनी एक विशिष्ट पहचान और स्वर खोजा। इसी प्रक्रिया के माध्यम से समाज ने अपनी कमियों और खूबियों को पहचानना सीखा और नए प्रगतिशील विचारों ने अपनी जगह बनाई। साहित्यिक पत्रकारिता दरअसल शब्दों की वह यात्रा है, जो समय के साथ चलती है और समय से सवाल भी करती है। साधारण पत्रकारिता का काम है घटनाओं को सामने रखना। वह बताती है कि क्या हुआ, कब हुआ और किसने किया, लेकिन साहित्यिक पत्रकारिता वहां रुकती नहीं। वह पूछती है-यह क्यों हुआ? इसका असर समाज के किस हिस्से पर पड़ा? आने वाले समय में यह हमें कहां ले जा सकता है? इसी कारण साहित्यिक पत्रकारिता धीमी है, पर गहरी है। वह तत्काल प्रतिक्रिया नहीं, दीर्घकालिक समझ विकसित करती है। हिंदी भाषा का आधुनिक रूप किसी एक दिन में तय नहीं हुआ। खड़ी बोली को काव्य और गद्य की मानक भाषा बनाना एक ऐतिहासिक प्रक्रिया थी। पहले साहित्य की भाषा ब्रज और अवधी थी, लेकिन जैसे-जैसे आधुनिक शिक्षा और प्रिंट संस्कृति का विस्तार हुआ, एक ऐसी भाषा की जरूरत महसूस हुई जो व्यापक जनसमूह से जुड़ सके। साहित्यिक पत्रिकाओं ने खड़ी बोली को अपनाया। उसे प्रयोग में लाया। उसे सुधारते हुए आगे बढ़ाया। वर्तनी में एकरूपता लाई गई। व्याकरण को व्यवस्थित किया गया। नए शब्द गढ़े गए। यह काम धीरे-धीरे लेखन की परंपरा में स्थापित हुआ। इस तरह साहित्यिक पत्रकारिता ने भाषा को संप्रेषण का साधन बनाने के साथ चिंतन का आधार बनाया। भाषा का मानकीकरण केवल तकनीकी प्रक्रिया नहीं होती। जब भाषा बदलती है तो सोच का ढंग भी बदलता है। खड़ी बोली के माध्यम से आधुनिक हिंदी गद्य विकसित हुआ। इसी गद्य में विचार, तर्क, आलोचना और विमर्श संभव हुए। यदि भाषा अस्पष्ट होती तो विचार भी अस्पष्ट रहता। इस अर्थ में साहित्यिक पत्रकारिता ने सोच को स्पष्ट करने का काम किया।

औपनिवेशिक काल में जब देश अंग्रेजी शासन के अधीन था तब साहित्यिक पत्रकारिता ने एक और जिम्मेदारी उठाई। वह राष्ट्रीय चेतना का माध्यम बनी। उस समय पत्र-पत्रिकाएं केवल साहित्य छापने का मंच नहीं थीं। वह सामाजिक और राजनीतिक जागरण का साधन थीं। उनमें कविता-कहानी के साथ ऐसे लेख छपते थे, जो समाज को अपने हालात समझने के लिए प्रेरित करते थे। स्वराज, शिक्षा, स्त्री की स्थिति, जातिगत भेदभाव जैसे प्रश्न साहित्यिक पत्रकारिता के माध्यम से चर्चा में आए। उस समय साहित्य और पत्रकारिता अलग-अलग क्षेत्र नहीं थे। संपादक स्वयं साहित्यकार होते थे। वह रचनाएं चुनते समय केवल साहित्यिक सौंदर्य नहीं देखते थे बल्कि यह देखते थे कि वह रचना समाज को क्या संदेश दे रही है। लेखन एक तरह का सामाजिक दायित्व था। शब्दों को हल्के में नहीं लिया जाता था। हर लेख, कविता, टिप्पणी जिम्मेदारी के साथ लिखी जाती थी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान साहित्यिक पत्रकारिता ने प्रतिरोध का स्वर अपनाया। प्रत्यक्ष रूप से सत्ता की आलोचना करना दुष्कर था, किंतु प्रतीकों, कथाओं और कविताओं के माध्यम से गंभीर से गंभीर बात सहजता से कही जा सकती थी। कहानियों ने आम लोगों के जीवन की कठिनाइयों को सामने रखा। कविता ने स्वतंत्रता की आकांक्षा को स्वर दिया। साहित्यिक पत्रकारिता उस समय लेखन के साथ उम्मीद थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश की स्थिति बदल गई, किंतु आजाद भारत के सामने अब भी कई गंभीर समस्याएं खड़ी थीं, जिनमें गरीबी, असमानता और सामाजिक अन्याय प्रमुख थीं। साहित्यिक पत्रकारिता ने इन प्रश्नों को उठाया। नई कहानी और नई कविता जैसे आंदोलनों को मंच मिला। इन आंदोलनों ने व्यक्ति के भीतर की जटिलताओं, अकेलेपन और सामाजिक

बदलावों को अभिव्यक्त किया। पत्रिकाएं नए लेखकों को सामने लेकर आईं। यह साहित्य का विस्तार नहीं था। यह समाज की बदलती मानसिकता का संकेत था।

द्विवेदी युग में साहित्यिक पत्रकारिता ने भाषा और विचार दोनों को अनुशासन दिया। भाषा शुद्धि का आग्रह केवल व्याकरण सुधार नहीं था। यह सोच की गंभीरता का आग्रह भी था। यह विश्वास था कि यदि भाषा स्पष्ट और सुसंगत होगी तो विचार भी अधिक प्रभावी होगा। इसी दौर में साहित्य को समाज सुधार का माध्यम माना गया। लेखन में नैतिकता और राष्ट्रीयता का भाव प्रमुख हुआ। पत्रिकाओं में आलोचना की परंपरा मजबूत हुई। आलोचना ने लेखन को कसौटी दी। साहित्यिक पत्रकारिता की एक बड़ी विशेषता यह रही कि उसने हाशिए के लोगों को स्थान दिया। इसके माध्यम से स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी जीवन जैसे विषय चर्चा में आए, जिन्हें लंबे समय तक मुख्य धारा में स्थान नहीं मिला था। पत्रिकाओं ने इन पर लेख और रचनाएं प्रकाशित कीं। उन्होंने समाज से पूछा–क्या विकास सबके लिए है? क्या बराबरी सच में है? इस प्रकार साहित्यिक पत्रकारिता ने लोकतंत्र को केवल राजनीतिक ढांचे तक सीमित नहीं रहने दिया। उसने उसे सामाजिक अर्थ भी दिया।



समय के साथ पत्रकारिता का स्वरूप बदलता गया। बाजार का प्रभाव बढ़ा। खबरें तेज हो गईं। मनोरंजन ने गंभीर चर्चा की जगह लेनी शुरू कर दी। सूचना की अधिकता ने विचार की गहराई को कम कर दिया। ऐसे समय में साहित्यिक पत्रकारिता का महत्व और बढ़ जाता है। वह हमें धीमा होने की याद दिलाती है। वह कहती है–हर बात तुरंत समझ में नहीं आती। कुछ बातों को समझने के लिए धैर्य चाहिए। भूमंडलीकरण के दौर में हर चीज को उत्पाद की तरह देखने की प्रवृत्ति बढ़ी। किताब भी बिकने वाली वस्तु है। लेखक भी ब्रांड बन सकता है। इस माहौल में साहित्यिक पत्रकारिता का काम कठिन हो गया, लेकिन उसने पूरी तरह हार नहीं मानी। उसने साहित्य को केवल बाजार की शर्तों पर परिभाषित करने से इंकार कर दिया। उसने शब्द को केवल वस्तु बनने से रोका। यह प्रतिरोध हमेशा खुला नहीं होता, पर वह लगातार मौजूद रहता है। यह सच है कि साहित्यिक पत्रिकाएं आर्थिक संकट से गुजरती हैं। विज्ञापन कम मिलते हैं। पाठक वर्ग सीमित है। कई पत्रिकाएं बंद हुईं, पर यह भी सच है कि साहित्यिक पत्रकारिता खत्म नहीं हुई। वह छोटे रूप में, लघु पत्रिकाओं में, डिजिटल मंचों पर, नए प्रयासों के साथ जीवित है। यह उसकी जिजीविषा है। डिजिटल युग ने नई स्थिति पैदा की है। अब कोई भी लिख सकता है। प्रकाशित कर सकता है। इससे अभिव्यक्ति का लोकतांत्रीकरण हुआ है, लेकिन इसके साथ गुणवत्ता का सवाल भी जुड़ा है। संपादकीय चयन की प्रक्रिया कमजोर होने पर स्तर प्रभावित हो सकता है। इसलिए आज साहित्यिक पत्रकारिता के सामने दोहरी चुनौती है–खुलापन बनाए रखना और गुणवत्ता भी सुनिश्चित करना।

साहित्य और पत्रकारिता के संबंध पर विचार करते हुए पाएंगे कि दोनों अलग होते हुए भी जुड़े हुए हैं। साहित्य समय के साथ चलता है। पत्रकारिता समय को दर्ज करती है। साहित्यिक पत्रकारिता इन दोनों के बीच पुल का काम करती है। वह वर्तमान को समझने के लिए अतीत की रोशनी का सहारा



लेती है और भविष्य की दिशा का संकेत देती है। युवा पीढ़ी को लेकर अक्सर कहा जाता है कि वह लंबा नहीं पढ़ती, लेकिन शायद सवाल पढ़ने की लंबाई का नहीं, प्रस्तुति के तरीके का है। यदि भाषा संवादपरक हो। विषय जीवन से जुड़ा हो और सोचने का अवसर दे तो पाठक आज भी गहराई चाहता है। साहित्यिक पत्रकारिता को नए माध्यमों का उपयोग करते हुए अपनी आत्मा को बचाए रखना होगा। आज जब भाषा का स्तर गिरता दिखाई देता है, जब संवाद की जगह शोर बढ़ता जा रहा है, तब साहित्यिक पत्रकारिता हमें शब्दों की जिम्मेदारी याद दिलाती है। वह बताती है कि भाषा केवल बोलने का माध्यम नहीं, सोचने का भी माध्यम है। यदि भाषा कमजोर होगी, तो विचार भी कमजोर होगा। किसी भी समाज को समझना हो तो उस समय की साहित्यिक पत्रिकाएं पढ़नी चाहिए। वह बताती हैं कि उस समाज में किस बात पर बेचैनी है। किस बात पर संघर्ष है। किस बात पर उम्मीद है। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने अनेक दौर देखे हैं–जागरण, संघर्ष, निर्माण, बाजार का दबाव, डिजिटल परिवर्तन, लेकिन उसने हर दौर में अपने मूल प्रश्नों को जीवित रखा। मेरे लिए साहित्यिक पत्रकारिता केवल एक विषय नहीं बल्कि एक नैतिक आग्रह है। यह आग्रह है कि हम शब्दों को हल्का न करें। यह आग्रह है कि हम विचार को मनोरंजन में न बदल दें। यह आग्रह है कि हम समाज को सोचने की आदत से वंचित न होने दें। आज के दौर में जब खबरें, प्रतिक्रियाएं और बहसें तेजी से बदलती हैं तब साहित्यिक पत्रकारिता हमें ठहरने, सोचने और धीमे होने का साहस प्रदान करती है। वह कहती है कि समझने के लिए समय चाहिए। वह हमें सिखाती है कि पढ़ना केवल जानकारी लेना नहीं, स्वयं को बदलना भी है, लेकिन एक प्रश्न उठता है। यदि साहित्यिक पत्रकारिता इतनी जरूरी है तो क्या हम उसे पढ़ने और बचाने के लिए उतने ही प्रतिबद्ध हैं? क्या हम शब्दों की गहराई को महत्व देते हैं या केवल उनकी तात्कालिक चमक से संतुष्ट हो जाते हैं? क्या हम सचमुच एक ऐसे समाज की ओर बढ़ रहे हैं, जहां विचार के लिए जगह होगी या हम अनजाने में उस जगह को खाली कर रहे हैं? बड़ा प्रश्न यह कि अगर भाषा की गहराई कम होती जाएगी तो क्या हमारी सोच उतनी ही सतही नहीं हो जाएगी?



भारतीय लोकतंत्र की सूचना धारा बनीं हिंदी समाचार समितियां



खुशी वशिष्ठ
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
चतुर्थ वर्ष

समाचार केवल सूचना नहीं होते। वह समय का दस्तावेज होते हैं। जिस समाज में सूचना का प्रवाह सशक्त होता है, वहां लोकतंत्र भी सुदृढ़ होता है। इसी आवश्यकता ने संसार में समाचार समितियों के जन्म को संभव बनाया। समाचार समितियां वे संस्थाएं हैं, जो समाचार एकत्रित कर उन्हें विभिन्न समाचार पत्रों, रेडियो, टेलीविजन और अब डिजिटल माध्यमों तक पहुंचाती हैं। 19वीं शताब्दी में यूरोप में औद्योगिक क्रांति, तार प्रणाली और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के विस्तार ने समाचारों के त्वरित आदान-प्रदान की मांग को जन्म दिया। इसी पृष्ठभूमि में फ्रांस में 'हवास' समाचार एजेंसी की स्थापना सन् 1835 में हुई। इसके बाद ब्रिटेन में 1851 में स्थापित 'रॉयटर्स' जैसे संस्थानों ने वैश्विक संचार व्यवस्था को नई दिशा दी। तार और बाद में दूरसंचार प्रणालियों के माध्यम से यह संस्थाएं अंतरराष्ट्रीय समाचारों का आदान-प्रदान करने लगीं। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक समाचार समितियां वैश्विक संचार तंत्र की रीढ़ बन चुकी थीं, क्योंकि अधिकांश समाचार पत्र और प्रसारण संस्थान इन्हीं पर निर्भर थे।

भारत में समाचार समितियों का प्रवेश औपनिवेशिक काल में हुआ। अंग्रेजी शासन के दौरान विदेशी एजेंसियों के समाचार ही भारतीय समाचार पत्रों तक पहुंचते थे। ब्रिटिश शासन की नीतियों और दृष्टिकोण के अनुरूप समाचारों का चयन और प्रस्तुति होती थी। प्रथम विश्व युद्ध और स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में यह स्पष्ट हुआ कि समाचारों का स्रोत यदि विदेशी हाथों में रहेगा तो राष्ट्रीय दृष्टिकोण कमजोर पड़ेगा। इसी आवश्यकता से प्रेरित होकर भारतीयों ने स्वदेशी समाचार समितियों की स्थापना का प्रयास किया। पहली बार सन् 1905 में केशव चंद्र राय द्वारा स्थापित 'एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया' जैसे प्रयास हुए। स्वतंत्रता के बाद सन् 1948 में 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया' की स्थापना हुई, जिसने विदेशी नियंत्रण से मुक्त राष्ट्रीय समाचार प्रवाह की नींव रखी। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में इन संस्थाओं ने लोकतांत्रिक विमर्श को व्यापक आधार प्रदान किया। भारत बहुभाषी देश है, जहां हिंदी व्यापक रूप से समझी और पढ़ी जाती है। स्वतंत्रता के बाद यह अनुभव किया गया कि यदि समाचार केवल अंग्रेजी में उपलब्ध होंगे तो देश की बड़ी आबादी उनसे वंचित रह जाएगी। हिंदी भाषी क्षेत्रों में समाचार पत्रों की संख्या बढ़ रही थी, किंतु उन्हें विश्वसनीय हिंदी समाचार स्रोतों की आवश्यकता थी। इसी संदर्भ में हिंदी संवाद समितियों का जन्म हुआ। हिंदी में समाचार संप्रेषण का उद्देश्य केवल अनुवाद भर नहीं था बल्कि भारतीय दृष्टि से समाचारों का संकलन और प्रस्तुति भी था। इसी क्रम में सन् 1948 में शिवराम शंकर आप्टे के प्रयासों से हिन्दुस्थान समाचार की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं विशेषकर हिंदी में समाचार सेवा उपलब्ध कराना था। यह संस्था प्रारंभ से ही बहुभाषी सेवा के लिए जानी गई। इसने अनेक भारतीय भाषाओं में समाचार प्रसारित किए। इसकी स्थापना ने हिंदी पत्रकारिता को स्वायत्तता और गति प्रदान की।

हिंदी समाचार समितियों में 'हिन्दुस्थान समाचार' के अतिरिक्त 'समाचार भारती' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 1966 में स्थापित 'समाचार भारती' का उद्देश्य हिंदी माध्यम से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समाचार उपलब्ध कराना था। इसका मुख्यालय नई दिल्ली में था। यह अनेक हिंदी दैनिक पत्रों को सेवा प्रदान करती रही। सत्तर के दशक में आपातकाल के समय सरकार द्वारा विभिन्न समाचार समितियों का विलय कर 'समाचार' नामक एक संयुक्त संस्था बनाई गई, किंतु आपातकाल समाप्त होने के बाद पुनः स्वतंत्र संस्थाएं अस्तित्व में आईं। समाचार समितियां सूचना के माध्यम के साथ राजनीतिक सत्ता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच संतुलन का प्रतीक रही हैं। वर्तमान स्थिति की बात करें तो 'हिन्दुस्थान समाचार' आज भी सक्रिय है। वह डिजिटल माध्यमों में विस्तार कर चुकी है। हिंदी सहित

अनेक भारतीय भाषाओं में सेवा प्रदान करती है। 'समाचार भारती' का प्रभाव समय के साथ कम हुआ, किंतु इसका ऐतिहासिक योगदान उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रीय स्तर की हिंदी समाचार सेवाएं भी समय-समय पर अस्तित्व में आईं, किंतु संसाधनों और तकनीकी सीमाओं के कारण वे व्यापक प्रभाव नहीं छोड़ सकीं। डिजिटल युग में पारंपरिक समाचार समितियों की सदस्यता में गिरावट आई है, क्योंकि अनेक समाचार पत्र अब प्रत्यक्ष रूप से डिजिटल स्रोतों से समाचार प्राप्त करने लगे हैं। विशेष रूप से 'हिन्दुस्थान समाचार' ने अपने इतिहास में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। प्रारंभिक दशकों में संसाधनों की कमी, सदस्यता विस्तार की चुनौती और राजनीतिक दबाव जैसी समस्याएं सामने आईं। फिर भी इस संस्था ने हिंदी पत्रकारिता को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। 'समाचार भारती' ने हिंदी पत्रकारिता के पेशेवर ढांचे को सुदृढ़ करने में योगदान दिया।

21वीं शताब्दी में तकनीक ने समाचार जगत को पूरी तरह बदल दिया है। इंटरनेट, सामाजिक माध्यम और मोबाइल पत्रकारिता ने समाचारों को तात्कालिक बना दिया है। विश्व स्तर पर लोग समाचार के लिए डिजिटल मंचों पर अधिक निर्भर हो रहे हैं। इस परिवर्तन ने पारंपरिक समाचार समितियों की एकाधिकार स्थिति को चुनौती दी है। अब स्वतंत्र डिजिटल मंच, नागरिक पत्रकारिता और सामाजिक माध्यमों के माध्यम से भी समाचार तेजी से प्रसारित होते हैं। इससे समाचार समितियों की भूमिका में परिवर्तन आया है। अब उन्हें केवल समाचार संप्रेषक नहीं बल्कि विश्वसनीयता और तथ्य जांच के केंद्र के रूप में स्वयं को स्थापित करना पड़ रहा है। हिंदी समाचार समितियों के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। आर्थिक संकट प्रमुख है। सदस्यता आधारित मॉडल कमजोर पड़ा है, क्योंकि अनेक समाचार पत्र स्वयं के संवाददाता तंत्र को सुदृढ़ कर चुके हैं। विज्ञापन राजस्व में कमी और डिजिटल प्रतिस्पर्धा ने भी दबाव बढ़ाया है। तकनीकी उन्नयन के लिए निवेश की आवश्यकता है, किंतु संसाधन सीमित हैं। साथ ही सरकारी निर्भरता और नीतिगत दबाव भी कभी-कभी स्वतंत्रता को प्रभावित करते हैं। वैश्विक स्तर पर समाचार संस्थानों को टिकाऊ आर्थिक मॉडल खोजने की आवश्यकता है। हिंदी समाचार समितियों के लिए भी यह उतना ही प्रासंगिक है।

समाचार समितियां राष्ट्रीय और वैश्विक संचार व्यवस्था की आधारशिला रही हैं। 20वीं शताब्दी में जब संचार साधन सीमित थे, तब ये संस्थाएं समाचारों की जीवनरेखा थीं। आज स्थिति बदली है, किंतु उनकी प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई। अब उनकी भूमिका विश्वसनीय, सत्यापित और संतुलित समाचार प्रदान करने की है। पहले जहां वे समाचारों की एकमात्र धारा थीं, आज वे बहुधारात्मक मीडिया परिवेश का अहम स्तंभ हैं। हिंदी संवाद समितियों की यात्रा संघर्ष, परिवर्तन और पुनर्निर्माण की कहानी है। औपनिवेशिक निर्भरता से लेकर स्वदेशी सशक्तिकरण तक और मुद्रित युग से डिजिटल युग तक, इन संस्थाओं ने समय के साथ स्वयं को ढालने का प्रयास किया है। भविष्य में इनके लिए आवश्यक है कि वे तकनीकी नवाचार अपनाएं। डिजिटल मंचों पर सशक्त उपस्थिति बनाएं। तथ्य जांच और विश्लेषण को प्राथमिकता दें। साथ ही आर्थिक आत्मनिर्भरता के नए मॉडल विकसित करें। यदि वे अपनी विश्वसनीयता और जनसरोकार को केंद्र में रखें तो हिंदी समाचार समितियां आने वाले समय में भी भारतीय लोकतंत्र की सूचना धारा को सुदृढ़ बनाए रखेंगी।



हिंग्लिश की पटरी पर दौड़ रही हैं हिंदी की वेबसाइट्स



नंदनी वार्ष्णेय
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
द्वितीय वर्ष

हिंदी पत्रकारिता का सफर साल 1826 में 'उदन्त मार्तण्ड' नामक समाचार पत्र के साथ शुरू हुआ। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले इस पहले हिंदी पत्र का सम्पादन पंडित युगल किशोर शुक्ल ने किया था। यह पत्र सूचना का स्रोत होने के साथ भारतीय अधिकारों के लिए आवाज उठाने वाला एक साहसिक प्रयोग था। वक्त बदला और आज हम एक ऐसी वर्चुअल दुनिया में जी रहे हैं, जहां स्मार्ट फोन और इंटरनेट के माध्यम से सूचनाओं का प्रवाह पलक झपकते हो जाता है। वेबसाइट आधारित पत्रकारिता ने कई भाषाओं को एक क्षेत्रीय भाषा से उठाकर वैश्विक पटल पर ला खड़ा किया है। जनसंचार के सभी माध्यमों में हिंदी ने मजबूत पकड़ बनाई। अब इसमें इंटरनेट की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है।

हिंदी वेब पत्रकारिता का उदय और तकनीकी संघर्ष

इन्टरनेट पर हिंदी का आगाज आसान नहीं था। तकनीक की शुरुआती भाषा अंग्रेजियत की गोद में पली-बढ़ी थी। शुरुआती दौर में हिंदी की सामग्री को फोटो फॉर्मेट में या रोमन लिपि में लगाया जाता था। मानक फॉन्ट उपलब्ध नहीं थे। 1990 के दशक के अंत में भारत की आम जनता के लिए इंटरनेट के दरवाजे खुले। अंग्रेजी अखबार 'द हिन्दू' के ऑनलाइन आने के बाद डिजिटल माध्यम का शुभारंभ हुआ। इसके तुरंत बाद हिंदी पत्रों के बीच भी इंटरनेट पर अपनी मौजूदगी दर्ज कराने की होड़ मची। 22 सितम्बर 1999 को 'वेबदुनिया' के रूप में विश्व का पहला हिंदी वेब पोर्टल सामने आया। इस पोर्टल ने भारतीय भाषाओं को वेब पर लाने की दिशा में मील का पत्थर स्थापित किया। इसी दौर में यूनिकोड फॉन्ट के आगमन ने हिंदी वेब पत्रकारिता को नई दिशा देने और एकरूपता प्रदान की।

वेबसाइट की पत्रकारिता में बेहतर एसईओ की चुनौती

हिंदी का प्रयोग करते हुए एसईओ मतलब सर्च इंजन ऑप्टिमाइजेशन का ध्यान रखना जरूरी हो जाता है। आज कई वेबसाइटों ने हिंदी और अंग्रेजी का मिला-जुला स्वरूप अपना लिया है। ये वेबसाइटें हिंदी साइट होने के बावजूद शुद्ध हिंदी के बजाय हिंग्लिश का प्रयोग करती हैं। हिंग्लिश ऐसा शब्द नहीं है, जो आपको किसी औपचारिक शब्दावली या शब्दकोश में मिल जाए। आम बोलचाल की भाषा में इसका इस्तेमाल उस शैली के लिए किया जाता है, जहां हिंदी के साथ अंग्रेजी शब्दों का मेल हो। भाषायी-दृष्टिकोण से हिंग्लिश के बढ़ते प्रभाव को बड़ी चुनौती के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि, वेबसाइटों के लिए यह बेहतर विकल्प साबित होता है, क्योंकि इससे उनकी पहुंच का दायरा काफी बढ़ जाता है।

समकालीन परिदृश्य में मुख्य धारा की मीडिया और स्वतंत्र वेबसाइटों के बीच एक वैचारिक विभाजन दिखाई देता है। वरिष्ठ पत्रकार रवीश कुमार ने गोदी मीडिया शब्द का बार-बार इस्तेमाल किया है। यह शब्द उन मीडिया संस्थानों के लिए बोला जा रहा है जिनके बारे में कहा जाता है कि वे सत्ताधारी दल के पक्ष में काम करते हैं। विभिन्न स्रोतों के अनुसार न्यूज चैनलों की

सरकारी विज्ञापनों पर अत्यधिक निर्भरता उन्हें सत्ता के अनुकूल रिपोर्टिंग करने के लिए मजबूर करती है। इसका अनुमान इस आंकड़े से लगाया जा सकता है कि वित्त वर्ष 2019-20 में केंद्र सरकार ने विज्ञापनों पर प्रतिदिन 1.95 करोड़ रुपए खर्च किए थे। 'खबर लहरिया' ग्रामीण भारत की आवाज बनने वाला एक प्रमुख न्यूज पोर्टल है। यह पोर्टल साल 2016 में प्रिंट से पूरी तरह से डिजिटल प्लेटफॉर्म में बदल गया। इसका संचालन दलित और मुस्लिम महिलाओं द्वारा किया जाता है, जो बुंदेली और भोजपुरी जैसी स्थानीय बोलियों में रिपोर्टिंग करती हैं। 'न्यूजलॉन्ड्री' भारत का पहला सब्सक्रिप्शन आधारित मीडिया वॉचडॉग है। यह पोर्टल विज्ञापनों पर निर्भर रहने के बजाय सीधे तौर पर जनता के आर्थिक सहयोग से चलता है। इसके लोकप्रिय शो टीवी न्यूजेंस और एनएल टिप्पणी व्यंग्य और आलोचना के माध्यम से मुख्य धारा के मीडिया की कमियों को उजागर करते हैं। 'द प्रिंट' एक प्रमुख डिजिटल न्यूज पोर्टल है, जो मुख्य रूप से राजनीति और नीतियों पर केंद्रित है। इस पोर्टल की हिंदी शाखा को 'द प्रिंट हिंदी' के नाम से जाना जाता है। इस वेबसाइट के जरिए गंभीर विमर्श और गहन विश्लेषण को हिंदी पाठकों तक प्रभावी ढंग से पहुंचाया जा रहा है। इन डिजिटल पोर्टल्स ने हिंदी भाषी दर्शकों के लिए विशिष्ट शो तैयार किए हैं। उदाहरण के तौर पर, न्यूजलॉन्ड्री पर एनएल टिप्पणी एक लोकप्रिय शो है। इस शो की होस्टिंग पत्रकार अतुल चौरसिया हिंदी में करते हैं। यह कार्यक्रम मुख्य रूप से भारतीय मीडिया के तौर-तरीकों और देश की राजनीति का गहराई से विश्लेषण करता है।

आज स्मार्ट फोन के रूप में तकनीक हर हाथ में मौजूद है और उसके साथ हिंदी भी। भारत में हिंदी सामग्री की डिजिटल खपत 94 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। हालांकि, इस चमक के पीछे कुछ चुनौतियां भी हैं। कई छोटी वेबसाइटें विज्ञापनों की कमी के कारण आर्थिक घाटे में चल रही हैं। साथ ही फेक न्यूज और भ्रामक कंटेंट का बढ़ता खतरा भी वेबसाइट आधारित पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर सवालिया निशान लगाता है।

भाषा और बाजार

वेबसाइट आधारित हिंदी पत्रकारिता आज स्वीकार्यता के राजमार्ग पर तेजी से दौड़ रही है। लोकप्रिय अखबार जैसे 'दैनिक जागरण', 'दैनिक भास्कर', 'अमर उजाला' और 'हिन्दुस्तान' ने अपनी वेबसाइटों के जरिए करोड़ों पाठकों तक पहुंच बनाई। आज का युवा समाचारों के लिए टीवी या अखबार से ज्यादा मोबाइल ऐप्स और सोशल मीडिया पर निर्भर है। भारतीय युवाओं के स्मार्ट फोन में ढेरों ऐप होते हैं, जिनमें से कई हिंदी समाचार और मनोरंजन से जुड़े होते हैं। वेबसाइट की हिंदी पत्रकारिता आज अपनी विकास यात्रा के उस पड़ाव पर है, जहां वह वॉचडॉग की भूमिका निभाने के लिए तकनीक और साहस का सहारा ले रही है। हालांकि व्यावसायिक दबाव, कानूनी लड़ाइयां और फेक न्यूज की चुनौतियां अभी कायम हैं। जिस तरह हिंदी को अपने प्रसार के लिए मीडिया की जरूरत है, उसी तरह मीडिया को विस्तार के लिए हिंदी की आवश्यकता है। यह एक ऐसा रिश्ता है जिसके आने वाले समय में और अधिक परिपक्व होने की सम्भावना है।



राष्ट्रीय से जिला संस्करण तक पत्रकारिता का सफर



उत्कर्ष कुमार
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
तृतीय वर्ष

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। इसे समाज का दर्पण भी कहा गया है, लेकिन यह स्तंभ और दर्पण तब तक अधूरा था, जब तक इसकी झलक गांवों और छोटे कस्बों तक नहीं पहुंची थी। भारत में समाचार पत्रों की शुरुआत मुख्य रूप से राष्ट्रीय और स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को उठाने और समाज में बदलाव के लिए हुई थी। आजादी से पहले और उसके कुछ दशक बाद तक समाचार पत्रों का दायरा मुख्यत: बड़े शहरों और राष्ट्रीय मुद्दों तक सीमित था। गांव का आम आदमी, उसकी समस्याएं और उसके सरोकार हाशिए पर थे, लेकिन जैसे-जैसे देश का विकास हुआ। साक्षरता बढ़ी। लोकतंत्र की जड़ें गहरी हुईं, उसी तरह पाठकों की जरूरतें भी बदलने लगीं। लोगों को दिल्ली या मुंबई की खबरों से ज्यादा अपने जिले, शहर और मोहल्ले की खबरों में दिलचस्पी होने लगी। पत्रों ने राजधानी से निकलकर छोटे कस्बों की ओर रुख किया। राष्ट्रीय संस्करण से जिला संस्करण तक की यह यात्रा केवल खबरों के भूगोल बदलने की कहानी नहीं है। यह उस आम पाठक के मुख्य धारा में आने की कहानी है, जो अब अपनी गली-मोहल्ले की खबर को देश की राजनीति के समान ही प्रमुखता से पढ़ता है। इसी मांग ने जिला संस्करणों को जन्म दिया, जिसे आज हम हाइपर लोकल पत्रकारिता के रूप में जानते हैं।

आजादी से पहले और 1970 के दशक तक भारतीय पत्रकारिता को पत्रकारिता का स्वर्णिम युग कहा जाता है। उस दौर में यह अपने राष्ट्रीय स्वरूप में थी। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, मिशन थी। वर्ष 1826 में युगल किशोर शुक्ल ने महसूस किया था कि अंग्रेजी अखबार से हिंदुस्तानियों का भला नहीं हो रहा। हिंदी का अखबार निकालना चाहिए। 30 मई 1826 को उनके द्वारा निकाला गया पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' खड़ी बोली और ब्रजभाषा मिश्रित शैली में छपता था। आम मानस की भाषा होने के कारण सामाजिक सुधार आंदोलनों और कुरीतियों के उन्मूलन में वह सहायक रहा। महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' व 'हरिजन' और बाल गंगाधर तिलक ने 'केसरी' जैसे समाचार पत्रों के माध्यम से देश में राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य किया। इन पत्रों का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश राज के खिलाफ देश को एकजुट करना था। इनमें स्थानीय या गली-मोहल्ले की खबरों के लिए कोई जगह नहीं थी। उस समय छपाई की तकनीक पुरानी थी। उस दौर में प्रमुख समाचार पत्र दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और मद्रास जैसे महानगरों से प्रकाशित होते थे। इन केंद्रों से छपने के बाद समाचार पत्र रेलगाड़ियों और बसों के माध्यम से देश के अन्य शहरों और कस्बों तक पहुंचाए जाते थे। दूरदराज के इलाकों में पत्र एक या दो दिन की देरी से पहुंचता था, जिसे डाक संस्करण कहा जाता था। इस दौर के पत्रों में संसद की बहस, अंतर्राष्ट्रीय घटनाएं, राष्ट्रीय नेताओं के भाषण और बड़े नीतिगत फैसले मुख्य खबरें हुआ करती थीं। आम आदमी की रोजमर्रा की समस्याएं राष्ट्रीय समाचार पत्रों में जगह नहीं बना पाती थीं, क्योंकि उस वक्त आंदोलनों के प्रति जागरुकता ज्यादा थी।

जिस गति से भारत ने प्रगति की, राज्यों का भाषायी पुनर्गठन हुआ। क्षेत्रीय राजनीति का उदय हुआ। समाचार पत्रों ने अपना विस्तार शुरू किया। 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'हिंदुस्तान टाइम्स', 'नवभारत टाइम्स', 'आनंद बाजार पत्रिका' और 'दैनिक जागरण' जैसे बड़े राष्ट्रीय एवं भाषायी समाचार पत्रों ने महसूस किया कि केवल दिल्ली या मुंबई जैसे केंद्रों से पूरे देश की खबरों को कवर करना संभव नहीं है। इन पत्रों ने लखनऊ, पटना, जयपुर और भोपाल जैसी राज्यों की राजधानियों में अपने प्रिंटिंग प्रेस स्थापित करने शुरू किए। इन राज्य स्तरीय संस्करणों ने राज्य की राजनीति, विधानसभा की कार्यवाही और क्षेत्रीय विकास के मुद्दों को प्रमुखता से छापना शुरू किया। इससे पाठकों का जुड़ाव अखबारों से बढ़ा। 70 और 80 के दशक में साक्षरता दर में वृद्धि होने लगी थी।


my city
अमर उजाला
शनिवार 20.08.2022
कुरुक्षेत्र
कान्हा के दर्शन के लिए उमड़े भक्त, जुबां पर जयकारे
देर रात तक रही मंदिरों में श्रीकृष्ण जन्मोत्सव की धूम, गौड़ीय मठ, जयराम विद्यापीठ, बिरला मंदिर व बाबा श्रवण नाथ हवेली में ज्यादा भीड़
न्यूज कैप्सूल
आठ नए संकल्पित मिले
हादसे में कार चालक की मौत महिला सहित चार जख्मी
नरवाना नहर से मिला युवक का शव बीजा न लगने से तनाव में था विवेक, डल्ला माजरा साइफन से मिली बाइक
चिट्टे के साथ स्प्लायर सहित दो गिरफ्तार
ट्रैक्टर से कुत्ता कुचलने का विरोध किया तो की मारपीट
मीटर लगाने के एवज में रिश्वत मांगने का आरोप
पांच लोगों को नामजद करते हुए अन्य पर केस दर्ज
कई बार चक्कर काटने के बाद भी मीटर न लगाने का लगाया आरोप
विभाग की ओर से दूसरी में बाधा पहुंचाने की भी नहीं शिकायत
जन्माष्टमी पर विशेष
श्रीमद्भागवत पुराण के 10वें स्कंध का 82 वां अध्याय भावुक मिलन को समर्पित, गोपियों के संग सुदीक्षण स्नान पर पहुंची थी राधा रानी
ब्रह्मसरोवर का उत्तरी तट श्रीराधा-कृष्ण के आखिरी मिलाप का साक्षी
चूरापोस्त के साथ बाइक सवार काबू

भाग–चार से छह पेज–राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समाचारों के लिए निर्धारित था। उसके साथ जुड़ा एक अलग चार से आठ पेज का हिस्सा उस विशेष जिले की खबरों के लिए समर्पित होता था। डेस्कटॉप पब्लिशिंग ने पत्र बनाने की प्रक्रिया को सस्ता और तेज कर दिया। पेज को इंटरनेट या सेटेलाइट के माध्यम से दूरदराज के प्रिंटिंग सेंटरों पर भेजना संभव हो गया। 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद लोगों की क्रय शक्ति बढ़ी। छोटे शहरों में भी उपभोक्तावाद बढ़ा। विज्ञापन के इस नए बाजार में स्थानीय साड़ी की दुकानों, कोचिंग सेंटरों या ज्वेलर मालिकों के लिए पूरे राज्य या देश स्तर पर विज्ञापन देना संभव नहीं था। यह उनके लिए अत्यधिक महंगा सौदा था, लेकिन जिला संस्करण ने उन्हें कम कीमत पर अपने ही जिले के पाठकों तक पहुंचने का मौका दिया। विज्ञापनों का यह स्थानीयकरण मीडिया घरानों के लिए एक बड़ा राजस्व मॉडल बन गया।

1992 में 73वें और 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं और नगर पालिकाओं को अधिकार दिए गए। गांव के प्रधान, जिला परिषद सदस्य और मेयर के चुनाव महत्वपूर्ण हो गए। लोगों को यह जानने की उत्सुकता हुई कि उनके वॉर्ड का चुनाव कौन जीत रहा है। इस स्थानीय राजनीति को कवर करने के लिए जिला संस्करणों की जरूरत थी। साक्षरता अभियानों के कारण छोटे कस्बों और गांवों में करोड़ों नए साक्षर पैदा हुए। ये लोग अंग्रेजी के बजाय अपनी मातृभाषा या हिंदी में स्थानीय खबरें पढ़ना चाहते थे।

स्थानीय संस्करणों ने भारतीय लोकतंत्र की जमीनी हकीकत को बदल कर रख दिया। इसके कई सकारात्मक प्रभाव देखने को मिले। पहले जहां सड़क में गांव या मोहल्ले में बिजली कटौती खबर नहीं होती थी, वहीं अब यह जिला संस्करण की हेडलाइन बनने लगी। इससे स्थानीय स्तर पर प्रशासन पर दबाव पड़ा। जिला अधिकारी, पुलिस अधीक्षक और अन्य स्थानीय अधिकारियों के कामकाज पर पत्रकारों की नजर

सड़कों का जाल बिछ रहा था, जिससे अखबारों को सुबह छोटे शहरों तक पहुंचाना आसान हो गया था।

जिला और नगर संस्करणों के संदर्भ में 1990 का दशक भारतीय प्रिंट मीडिया के लिए क्रांति का दशक था। प्रसिद्ध मीडिया विशेषज्ञ रॉबिन जेफ्री ने अपनी पुस्तक 'इंडियाज न्यूज पेपर रिवोल्यूशन' में इसका विस्तार से जिक्र किया है। यह वह समय था जब हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों ने आक्रामकता से जिला और ब्लॉक स्तर तक अपनी पहुंच बनानी शुरू की। समाचार पत्रों ने पुलआउट या 'सिटी भास्कर', 'जागरण सिटी', 'अमर उजाला माई सिटी' जैसे परिशिष्ट निकालने शुरू किए। समाचार पत्र का मुख्य

रहने लगी। मीडिया का डर निचले स्तर के भ्रष्टाचार को उजागर करने में बड़ा हथियार बना। जिला स्तरीय खेल प्रतियोगिताएं, स्कूलों के नतीजे और स्थानीय कलाकारों को पत्रों में जगह मिलने लगी, जिससे उनका मनोबल बढ़ा। हर जिले और ब्लॉक में अंशकालिक संवाददाताओं या दूसरी भाषा में स्ट्रिंगर्स, वितरकों और विज्ञापन एजेंटों की फौज खड़ी हो गई। इससे स्थानीय स्तर पर बड़े पैमाने पर रोजगार पैदा हुआ। विकास की इस यात्रा के कुछ चुनौतीपूर्ण और नकारात्मक पहलू भी रहे हैं। जहां एक ओर जिला संस्करणों ने लोकतंत्र को जमीनी स्तर पर सशक्त बनाया, वहीं इसके कुछ ऐसे गंभीर परिणाम सामने आए जो आज भी पत्रकारिता के समक्ष बड़ी चुनौती बने हुए हैं। हाइपर लोकल होने की होड़ में अपराध की छोटी-छोटी खबरों को बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया जाने लगा। राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय और गंभीर आर्थिक मुद्दों के लिए पत्रों में जगह कम हो गई। जिला स्तर पर काम करने वाले कई पत्रकारों को नियमित वेतन नहीं मिलता। उन्हें विज्ञापन लाने पर कमीशन मिलता है। इससे पत्रकारिता और विज्ञापन के बीच की रेखा मिट गई। कई बार खबर छापने या न छापने के एवज में पैसे के लेन-देन के मामले भी सामने आते हैं। छोटे शहरों में पत्रकार स्थानीय बाहुबलियों और नेताओं के करीब होते हैं। ऐसे में उनके खिलाफ निष्पक्ष होकर लिखना पत्रकारों के लिए जानलेवा जोखिम बन जाता है। पहले पत्रों के संपादकीय पृष्ठ समाज को दिशा देते थे। जिला संस्करणों के दौर में मनोरंजन, अपराध और सनसनी ने साहित्य, कला और गंभीर वैचारिक विमर्श की जगह ले ली।

आज की कहानी केवल प्रिंट मीडिया तक सीमित नहीं है। स्मार्ट फोन और सस्ते इंटरनेट के दौर में राष्ट्रीय से जिला तक की यह यात्रा अब जिला से व्यक्तिगत स्क्रीन तक पहुंच गई है। अब सभी प्रमुख पत्र अपने हर जिले का संस्करण ईपेपर के रूप में मुफ्त या मामूली शुल्क पर इंटरनेट पर उपलब्ध कराते हैं। पब्लिक ऐप, लोकल और वे-टू-न्यूज जैसे ऐप्स ने जिला संस्करणों के मॉडल को वीडियो फार्मेट में बदल दिया है। स्मार्ट फोन की लोकेशन के आधार पर आपको पांच किलोमीटर के दायरे की खबरें वीडियो के रूप में मिल जाती हैं। अब स्मार्ट फोन वाला हर व्यक्ति रिपोर्टर बन गया है। फेसबुक और यूट्यूब पर हर शहर के अपने लोकल न्यूज


City भास्कर

NEWS BRIEF

मौसम में बदलाव का दिखने लगा असर

दीवाली फेस्टिवल में डायट जरा संभलकर

विंटर में छाए फैशन के शोख कलर

विंटर में यंगस्टर्स को भा रहे लेदर जैकेट

गर्ल्स को दिए स्वच्छता के टिप्स

फेस्टिवल थीम पर सजा सपनों का जहां

गार्डन की गमलों से बढ़ाएं सुंदरता

SHOP FOR ₹3990 AND GET ₹701/- OFF

JOHN PLAYERS GET REAL.

पोर्टल चल रहे हैं। राष्ट्रीय संस्करणों की विशालता से लेकर जिला संस्करणों की सूक्ष्मता तक भारतीय समाचार पत्रों की यात्रा एक अभूतपूर्व कहानी है। इसने यह साबित किया है कि न्यूज तभी तक प्रासंगिक है, जब तक उसका सीधा संबंध पाठक के जीवन से है। राष्ट्रीय पत्र जहां हमें यह बताते हैं कि दुनिया और देश किस दिशा में जा रहे हैं, वहीं जिला संस्करण यह सुनिश्चित करते हैं कि हमारे घर के बाहर बहने वाली नाली और टूटी सड़क भी लोकतंत्र में अहम मुद्दा है। आज के डिजिटल दौर में प्रिंट मीडिया के सामने अपने जिला संस्करणों की आर्थिक व्यवहार्यता बचाए रखने की चुनौती है। वैसे एक बात तय है-माध्यम चाहे जो भी हो, अपनी जड़ों और अपने मोहल्ले की खबरों को जानने की इंसान की भूख कभी कम नहीं होगी। यही भूख जिला संस्करणों या हाइपर लोकल पत्रकारिता को हमेशा जीवित रखेगी।

यूट्यूब और पॉडकास्ट के दौर में हिंदी पत्रकारिता की आत्मा की तलाश



मुन्ना कुमार वर्मा
शिफ्ट इंचार्ज, इंडिया न्यूज डॉट इन, आइटीवी नेटवर्क
एलुमनाइ, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार आरएलएसी, दिल्ली विवि

एक समय था जब सुबह की शुरुआत दरवाजे पर गिरते अखबार की आवाज से होती थी। चाय की भाप के साथ पढ़ी जाती सुर्खियां दिन की दिशा तय करती थीं। संपादकीय पर ठहरती नजर सोच को आकार देती थी। अखबार केवल खबरों का पुलिंदा नहीं थे, वह समाज की धड़कन थे। कस्बों और गांवों में हिंदी सिर्फ बोली नहीं, पहचान थी और पत्रकारिता उसी पहचान की मुखर आवाज।

मगर अब सुबह का वह दृश्य बदल गया है। कागज की सरसराहट की जगह मोबाइल स्क्रीन की चमक ने ले ली है। खबरें पन्नों पर नहीं, नोटिफिकेशन में उतरती हैं। नई पीढ़ी उंगलियों से पन्ने नहीं पलटती बल्कि स्क्रीन पर स्क्रॉल करती है। यह बदलाव धीरे-धीरे नहीं आया। यह डिजिटल तफूान था, जिसने न्यूज रूम की शक्ल और सोच दोनों को बदल दिया। आज हिंदी पत्रकारिता स्टूडियो की दीवारों से निकलकर स्मार्ट फोन के कैमरे और माइक्रोफोन में बस गई है। उसका बड़ा हिस्सा अब यूट्यूब और स्पॉटीफाई जैसे प्लेटफॉर्म पर सांस ले रहा है। लेकिन इस बात का कि क्या यह सिर्फ माध्यम का परिवर्तन है या आत्मा का भी?

एंकर डेस्क से रिंग लाइट तक :
बदलता चेहरा, बदलती भाषा

टेलीविजन के दौर में 'आज तक', 'एनडीटीवी इंडिया' और 'जी न्यूज' ने हिंदी पत्रकारिता को तेजी, तात्कालिकता और बहस की नई शैली दी। ब्रेकिंग न्यूज का लाल बैनर दर्शकों की धड़कनें तेज कर देता था। प्राइम टाइम बहसें घरों की शाम का हिस्सा बन चुकी थीं। अब वही बहसें डिजिटल अवतार में मौजूद हैं। क्लिप्स को काट-छांट कर वायरल फॉर्मेट में ढाला जाता है। पांच मिनट की तीखी बहस इंस्टाग्राम रील और यूट्यूब शॉर्ट्स में बदल जाती है। स्टूडियो की जगह अब रिंग लाइट और लैपटॉप ने ले ली है। इसी बीच डिजिटल प्लेटफॉर्म पर नए प्रयोग भी हुए। 'द लल्लनटॉप' जैसे मंचों ने बातचीत की शैली को हल्का, सहज और दर्शक केन्द्रित बनाया। 'बीबीसी न्यूज हिंदी' ने डिजिटल एक्सप्लेनर और ग्राउंड रिपोर्ट के जरिए गंभीर पत्रकारिता का डिजिटल मॉडल पेश किया। टीवी नाइन भारतवर्ष सहित कई चैनलों ने अपनी डिजिटल शाखाएं मजबूत कीं। यहां कैमरा स्थिर नहीं रहता। वह विश्वविद्यालयों, अदालतों, गांवों और विरोध प्रदर्शनों तक जाता है। भाषा भी बदलती है। हिंदी में अंग्रेजी शब्दों का सहज मिश्रण पेश किया जाता है, जिसे हिंग्लिश कहते हैं। यह बदलाव दर्शकों के करीब लाता है, लेकिन कुछ लोग इसे भाषा की शुद्धता पर आघात भी मानते हैं।

पॉडकास्ट : शोर के बीच सुनने की संस्कृति की वापसी

जहां वीडियो प्लेटफॉर्म ने दृश्य प्रभाव को मजबूत किया, वहीं पॉडकास्ट ने सुनने की परंपरा को पुनर्जीवित किया। लगातार शोर और बहस से थके दर्शकों के लिए ऑडियो पत्रकारिता ने सुकून का विकल्प दिया। एप्पल पॉडकास्ट और स्पॉटीफाई पर हिंदी पॉडकास्ट राजनीति, इतिहास, अपराध, साहित्य और समाज पर चर्चाएं कर रहे हैं। आज तक रेडियो और बीबीसी हिंदी जैसे संस्थानों ने दैनिक न्यूज ब्रीफिंग और विश्लेषणात्मक कार्यक्रम शुरू किए। पॉडकास्ट की खूबी उसकी गति है। यहां तीन मिनट की सनसनी नहीं, तीस मिनट की समझ होती है। जटिल विषयों, आर्थिक नीतियों, सामाजिक न्याय, जलवायु संकट को विस्तार से समझाया जाता है। दृश्य प्रभाव की अनुपस्थिति भाषा को सटीक और जिम्मेदार बनाती है। हिंदी पत्रकारिता के लिए यह नया प्लेटफॉर्म नहीं है। एक तरह से आत्ममंथन का अवसर है।

स्वतंत्र आवाजों का उभार : लोकतांत्रीकरण या विखंडन

डिजिटल माध्यम ने पत्रकारिता को लोकतांत्रिक बनाया है। अब किसी बड़े मीडिया हाउस की छत के नीचे होना अनिवार्य नहीं है। एक कैमरा, इंटरनेट और साहस काफी है। कई स्वतंत्र पत्रकार यूट्यूब के जरिए ग्रामीण इलाकों से ग्राउंड रिपोर्ट कर रहे हैं। वह उन मुद्दों को उठा रहे हैं, जो मुख्यधारा में जगह नहीं पाते। दर्शक सीधे उन्हें सदस्यता, सुपरचैट या

क्राउड फंडिंग के जरिए सहयोग देते हैं, लेकिन स्वतंत्रता के साथ जोखिम भी है। आय का स्रोत अस्थिर है। एल्गोरिदम की नीति बदलते ही व्यूज और आय दोनों गिर सकते हैं। आलोचनात्मक रिपोर्टिंग पर ट्रोलिंग और ऑनलाइन उत्पीड़न आम बात है। सबसे बड़ा संकट यह कि डिजिटल मंच पर राय और रिपोर्टिंग की रेखा धुंधली हो जाती है। हर टिप्पणी पत्रकारिता नहीं होती, पर दर्शक के लिए फर्क करना मुश्किल हो सकता है।

एल्गोरिदम बनाम नैतिकता : कौन तय करेगा प्राथमिकता

डिजिटल पत्रकारिता का खेल एंगेजमेंट पर चलता है। क्लिक, शेयर और वॉच टाइम नए मानदंड हैं। ऐसे में सुर्खियां चौंकाने वाली बनती हैं और थंबनेल उत्तेजक। स्पीड ने वेरिफिकेशन को पीछे धकेल दिया है। पूर्व में खबर छपने से पहले कई संपादकीय स्तरों से गुजरती थी। अब पहले डालो, बाद में सुधारो का दबाव है। बहसें रिपोर्टिंग पर भारी पड़ती हैं। एंकर व्यक्तिगत ब्रांड बन जाते हैं। फिर भी तस्वीर पूरी तरह निराशाजनक नहीं है। कई डिजिटल मंच तथ्य, जांच, डाटा पत्रकारिता और क्षेत्रीय रिपोर्टिंग को प्राथमिकता दे रहे हैं। वह समझ रहे हैं कि भरोसा सबसे बड़ी पूंजी है।

भाषा की नई यात्रा : हिंग्लिश और पहचान

डिजिटल दुनिया में हिंदी का रूप बदल रहा है। रोमन लिपि में लिखी हिंदी आम हो चुकी है। थंबनेल और सोशल मीडिया पोस्ट में देवनागरी कम दिखती है। कुछ इसे व्यावहारिक मानते हैं। इसकी वजह सर्च और शेयर का आसान होना है। कुछ इसे सांस्कृतिक क्षरण कहते हैं। असल सवाल यह कि भाषा स्थिर नहीं होती। वह समय के साथ बदलती है। हिंदी पत्रकारिता यदि युवा पीढ़ी से संवाद करना चाहती है तो उसे भाषा की इस नई धारा को समझना होगा। लेकिन साथ ही, उसे अपनी जड़ों को भी संभालना होगा।

गांव की आवाज : पहुंच है, पर प्रतिनिधित्व कितना

सस्ता डाटा और स्मार्ट फोन ने ग्रामीण भारत को डिजिटल मानचित्र पर ला दिया है, लेकिन कंटेंट अब भी शहरी नजरिए से गढ़ा जाता है। गांवों की खबरें अक्सर चुनाव या आपदा के समय ही प्रमुखता पाती हैं। हालांकि, कई स्वतंत्र रिपोर्टर छोटे शहरों और जिलों से रिपोर्टिंग कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार और मधय प्रदेश जैसे राज्यों के जमीनी वीडियो लाखों दर्शक पा रहे हैं। दर्शक चमक-दमक से अधिक सच्चाई को महत्व दे रहे हैं। यह संकेत है कि हिंदी पत्रकारिता की असली ताकत अभी भी जमीन पर है।

कमाई का गणित : पत्रकारिता या प्रदर्शन

प्रिंट मीडिया के पास सदस्यता और स्थिर विज्ञापन मॉडल थे। डिजिटल मंचों पर आय अस्थिर है। यूट्यूब की नीति बदली तो आय घट गई। पॉडकास्ट प्रायोजकों पर निर्भर हैं। ऐसे में सनसनी आकर्षक विकल्प बन जाती है। वैसे हर वायरल वीडियो विश्वसनीय नहीं होता। लंबी, खोजी रिपोर्टिंग समय और संसाधन मांगती है, जो हर डिजिटल मंच के पास नहीं। फिर भी कुछ संस्थान सदस्यता मॉडल और पाठक समर्थित पत्रकारिता की ओर लौट रहे हैं। यह मॉडल शायद भविष्य का संतुलन बन सके।

दर्शक भी भागीदार

डिजिटल पत्रकारिता में दर्शक केवल उपभोक्ता नहीं, सहभागी हैं। कमेंट सेक्शन में तुरंत प्रतिक्रिया मिलती है। गलतियां पकड़ी जाती हैं। यह जवाबदेही का नया रूप है। पर साथ ही, ट्रोलिंग और दुष्प्रचार बढ़ा है। पत्रकारों को आलोचना और हमले के बीच फर्क करना सीखना पड़ता है। पॉडकास्ट इस मामले में अपेक्षाकृत शांत मंच साबित हुए हैं। यहां संवाद अधिक संयमित और विचारपूर्ण है।

प्रिंट का प्रतिस्थापन नहीं डिजिटल

यह मान लेना आसान है कि डिजिटल मीडिया ने प्रिंट को समाप्त कर दिया। हकीकत इससे अधिक जटिल है। आज अखबारों के अपने यूट्यूब चैनल हैं। टीवी एंकर पॉडकास्ट चला रहे हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म ईपेपर प्रकाशित कर रहे हैं। पुराने और नए माध्यमों का संगम ही भविष्य है। खोजी पत्रकारिता की गहराई और डिजिटल की पहुंच दोनों का मेल हिंदी पत्रकारिता को नई दिशा दे सकता है।

भरोसे की लौ

अंतिम बात, पत्रकारिता का आधार भरोसा है। माध्यम बदल सकता है, पर मूल सिद्धांत सत्यापन, निष्पक्षता और साहस नहीं। हिंदी पत्रकारिता आज चौराहे पर खड़ी है। एक रास्ता एल्गोरिदम की चमक की ओर जाता है, दूसरा जवाबदेही की रोशनी की ओर। चुनाव आसान नहीं, लेकिन निर्णायक है। स्याही भले फीकी पड़ रही हो, स्क्रीन चमक रही हो, पर पत्रकारिता की आत्मा वही रहेगी, जो कठिन सवाल पूछने और अनसुनी आवाजों को मंच देने का साहस रखती है।

दोतरफा संचार का दौर लाया सोशल मीडिया



अभिषेक कुमार
निदेशक, नव प्रवाह फाउंडेशन
समस्तीपुर, बिहार
एलुमनाइ, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार आरएलएसी, दिल्ली विवि

डिजिटल युग ने पत्रकारिता की दुनिया को पूरी तरह बदल दिया है। पहले खबरें अखबार, रेडियो और टीवी के जरिए लोगों तक पहुंचती थीं। अब वही काम मोबाइल फोन और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म कर रहे हैं। खासकर हिंदी पत्रकारिता के लिए सोशल मीडिया एक बड़ा अवसर बनकर सामने आया है। फेसबुक, इंस्टाग्राम और ट्विटर (अब एक्स) जैसे मंचों ने खबरों को आम लोगों तक तेजी से, सरल भाषा में और मानवीय दृष्टिकोण के साथ पहुंच बनाने में सफलता हासिल की है। एक किसान पंजाब से अपने खेत की समस्या पर वीडियो डाल सकता है। एक एक्टिविस्ट तमिलनाडु से पर्यावरण पर अभियान चला सकता है और एक कॉमेडियन मुंबई से लाखों लोगों तक अपनी बात पहुंचा सकता है, बिना किसी संपादक की अनुमति के। एक तरह से जो आवाजें पहले नहीं सुनी जाती थीं, अब वह केंद्र में हैं।

रियल टाइम पत्रकारिता का उदय

भारत में 80 करोड़ से अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं। उनमें से बड़ी संख्या सोशल मीडिया के माध्यम से समाचार प्राप्त करती है। सस्ते स्मार्ट फोन और कम लागत वाले डाटा प्लान के कारण अब ग्रामीण क्षेत्रों के लोग भी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय घटनाओं से अपडेट रह सकते हैं। पहले लोग सुबह के अखबार या शाम के समाचार बुलेटिन का इंतजार करते थे। अब मोबाइल पर आने वाला एक नोटिफिकेशन ही ताजी से ताजी खबर पहुंचा देता है। इस बदलाव ने रियल टाइम पत्रकारिता की नई संस्कृति को जन्म दिया है।



उदाहरण के लिए–बाढ़ या भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं के दौरान प्रत्यक्षदर्शी बिना किसी देरी के वीडियो और तस्वीरें सोशल मीडिया पर साझा कर देते हैं। पत्रकार अक्सर इन पोस्टों को प्रारंभिक सूचना स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं। कुछ मामलों में जब ऐसा कंटेंट वायरल हो जाता है तो बचाव दल और अधिकारी भी तेजी से प्रतिक्रिया देते हैं। सोशल मीडिया ने पत्रकारिता को वन–वे कम्युनिकेशन से टू–वे कम्युनिकेशन में बदल दिया है। अब पाठक सिर्फ खबर नहीं पढ़ता। वह उस पर अपनी प्रतिक्रिया भी देता है। सवाल पूछता है और कभी–कभी खुद खबर का स्रोत बन जाता है।

सिटीजन जर्नलिज्म का लोकतांत्रिक विस्तार

सोशल मीडिया ने हिंदी पत्रकारिता को एलीट दायरे से बाहर निकाल कर आम लोगों तक पहुंचाया है। इससे लोकतंत्र मजबूत होता दिखता है। ग्रामीण भारत में अनेक युवा मोबाइल पत्रकार बन गए हैं। वे अपने क्षेत्र की समस्याओं को उठाते हैं। सड़क, बिजली, पानी और शिक्षा से जुड़े मसले उठाते हैं। इससे स्थानीय प्रशासन पर दबाव बनता है। कई बार समाधान भी निकलता है। यह पत्रकारिता का नया रूप है, जिसे सिटीजन जर्नलिज्म कहा जाता है। इसमें आम लोग भी पत्रकार की भूमिका निभाते हैं। सोशल मीडिया ने न केवल व्यक्तिगत संचार और पहचान को बदला है बल्कि इसने नए पावर डायनेमिक्स भी उत्पन्न किए हैं। फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब और ट्विटर जैसे प्लेटफॉर्म पर बड़ी संख्या में फॉलोअर्स जुटाने वाले लोग, जिन्हें इन्फ्लुएंसर कहा



जाता है, अब मार्केटिंग, मनोरंजन और राजनीति के क्षेत्रों में अहम भूमिका निभा रहे हैं। इनकी शक्ति इस बात में निहित है कि वह लोगों की राय को प्रभावित कर रहे हैं और उपभोक्ताओं के व्यवहार को दिशा दे रहे हैं।

क्षेत्रीय और भाषा आधारित पत्रकारिता

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने लेख, चित्र, वीडियो आदि के माध्यम से हिंदी के साथ कुछ क्षेत्रीय भाषाओं में समाचारों को व्यापक दर्शकों तक पहुंचाने का अवसर दिया है। क्षेत्रीय भाषाओं में काम करने वाले छोटे डिजिटल न्यूज स्टार्टअप स्थानीय मुद्दों पर धयान केंद्रित करके लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं। इससे महानगरीय दृष्टिकोण का प्रभुत्व कम होता है और जमीनी हकीकत सामने आती है। मसलन–किसानों की समस्याएं, ग्रामीण शिक्षा या स्थानीय पर्यावरण से जुड़े मुद्दे अक्सर सोशल मीडिया पर ट्रेंड होने के बाद राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान आकर्षित करते हैं।

नैतिक जिम्मेदारी और आगे की दिशा

जितनी अधिक पहुंच होती है, उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी होती है। फेसबुक ने व्यापक पहुंच दी। इंस्टाग्राम ने दृश्यात्मक प्रस्तुति दी। ट्विटर ने त्वरित संवाद की सुविधा दी। इसके साथ यह भी देखा जाता है कि सोशल मीडिया पर आने वाली कुछ सूचनाओं से समाज में वैमनस्यता फैली है। एक ओर जहां सोशल मीडिया ने समाज में सकारात्मक संवाद को बढ़ावा दिया, वहीं इसने इको चैंबर जैसी प्रवृत्ति को भी जन्म दिया। यहां लोग उसी तरह के विचारों के संपर्क में आते हैं जो उनकी पहले से बनी मान्यताओं को मजबूत करते हैं। यह स्थिति ध्रुवीकरण को बढ़ावा देती है। साथ में विपरीत विचारों से संवाद करने की संभावना कम कर देती है।

सोशल मीडिया पर फेक न्यूज का खतरा, बिना जांच के खबरों के वायरल होने का खतरा, ट्रोलिंग और गलत टिप्पणियां फैलाने का खतरा जैसी अनेक चुनौतियां हैं। इसका मुख्य कारण लोगों में समझ की कमी, लाइक्स और व्यूज की होड़, सनसनीखेज प्रस्तुति और वायरल होने की चाह है। लाइक्स और फॉलोअर्स की संख्या कई युवाओं के लिए आत्म मूल्य का पैमाना बन जाती है। बाहरी मान्यता की ओर यह झुकाव आंतरिक आत्म सम्मान को कमजोर कर सकता है, क्योंकि व्यक्ति अपनी सराहना और स्वीकार्यता के लिए बढ़ते हुए सोशल मीडिया पर निर्भर होने लगते हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि पत्रकारिता का मूल उद्देश्य सत्य और समाज की भलाई है। अगर सोशल मीडिया का उपयोग जिम्मेदारी और संवेदनशीलता के साथ किया जाए तो हिंदी पत्रकारिता समाज में सकारात्मक बदलाव की बड़ी ताकत बन सकती है। तकनीक कितना भी आगे बढ़ जाए, पत्रकारिता के मूल्य–सत्य, निष्पक्षता और जनहित–हमेशा केंद्र में बने रहने चाहिए।



एक दूसरे के पूरक रहे हिंदी और अंग्रेजी समाचार पत्र



कृष्णा
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
प्रथम वर्ष

भारत में पत्रकारिता का दृष्टिकोण सदैव सामाजिक और राजनीतिक जनचेतना का रहा है। देश में पत्रकारिता का आरंभ करने का प्रयास डच मूल के व्यापारी विलियम बोल्ट्स ने किया। यह आरंभ साधारण नहीं था, क्योंकि औपनिवेशिक शासन में वह अपनी ही ईस्ट इंडिया कंपनी की काली करतूतों का खुलासा कर रहा था। इन खुलासों के लिए बोल्ट्स ने कलकत्ता काउंसिल हाउस के दरवाजे पर प्रिंटिंग प्रेस शुरू करने की सूचना चस्पा की थी। हालांकि उनका यह कदम मूलत: उनके व्यक्तिगत टकराव का परिणाम था, लेकिन भारत में समाचार पत्र की सोच देने वाला वह पहला व्यक्ति बना। इसी क्रम में जेम्स ऑगस्टस हिकी ने 29 जनवरी 1780 को 'बंगाल गजट' नामक अंग्रेजी अखबार की शुरुआत की। उन्होंने इस अखबार का प्रकाशन कलकत्ता के राधा बाजार स्थित कार्यालय से किया था। इसके साथ ही हिकी ने यह घोषणा भी की कि यह साप्ताहिक समाचार पत्र एक राजनीतिक एवं वाणिज्यिक अखबार है, जो सभी दलों के लिए खुला है, किन्तु किसी के प्रभाव से नहीं। विलियम बोल्ट्स व जेम्स ऑगस्टस हिकी ने अंग्रेजी भाषा से पत्रकारिता की नींव रखी। वहीं दूसरी तरफ भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता की शुरुआत के बीज पड़े। इसी दिशा में प्रयास करते हुए पंडित युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' नामक पहला हिंदी समाचार पत्र निकाला। यहीं से इस उपमहाद्वीप में हिंदी पत्रकारिता का उदय हुआ। आगे चलकर भारतीय जनता और बुद्धिजीवी वर्ग ने पत्रकारिता रूपी इस शस्त्र का ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भरपूर प्रयोग किया। 1826 से 1947 तक का शुरुआती दौर हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के लिए संघर्षपूर्ण रहा। उस काल के प्रमुख हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में 'बनारस अखबार', 'हरिश्चन्द मैग्जीन', 'भारत मित्र', 'प्रताप' आदि शामिल थे। इनमें सामाजिक सुधार, शिक्षा व राष्ट्रीयता की भावना से संबंधित सामग्री छापी गई। इसी दौर में कई निडर पत्रों का आगमन हुआ। इनमें जी. सुब्रमण्यम का अंग्रेजी अखबार 'द हिन्दू' और तमिल पत्र 'स्वदेशमित्रम', बाल गंगाधर तिलक के संपादन में निकलने वाला मराठी पत्र 'केसरी' और अंग्रेजी पत्र 'मराठा', दादा भाई नौरोजी का 'द वॉइस ऑफ इंडिया' तथा पंडित बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप' प्रमुख रूप से शामिल थे।

उस समय हिंदी पत्रकारिता ने लोगों को उनके अधिकारों और ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों से रूबरू कराया। उन्हें राष्ट्रीय विचारधारा से जोड़ा। इस दौरान पत्रकारिता को संघर्ष भी करना पड़ा। इसकी बानगी देखिए कि 1878 में जब वर्नाक्युलर एक्ट के तहत भाषायी अखबारों पर प्रतिबंध लगा। उस समय बंगला भाषा में छपने वाले पत्र 'अमृत बाजार पत्रिका' ने रातोंरात खुद को अंग्रेजी भाषा में परिवर्तित कर लिया ताकि उसका प्रकाशन निरंतर जारी रहे। इसी तरह ब्रिटिश शासन के खिलाफ छपने वाली सामग्री अंग्रेजी में छापी गई, जिससे कंपनी इन अखबारों पर प्रतिबंध न लगा पाए। इस प्रकार 1947 तक हिंदी व अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्र एक दूसरे के पूरक रहे। आजादी के बाद भारतीय पत्रकारिता का स्वरूप पहले से भिन्न रहा। अब भाषायी आधार पर पत्रकारिता में जनमानस की दिलचस्पी बंटने लगी। शहरी मध्यवर्ग अंग्रेजी भाषा को प्राथमिकता देने लगा। बड़े पाठक वर्ग और जमीनी स्तर पर मजबूत पकड़ के बावजूद हिंदी पत्रकारिता को नजरअंदाज किया गया।

हिंदी के पत्रकारों ने हर क्षेत्र की खबरों को कवर किया। 20वीं सदी में अनेक हिंदी के समाचार पत्र और पत्रिकाएं शुरू हुईं। समय के साथ वह लोकप्रिय भी हुए। इनमें 1947 में कानपुर से निकला 'दैनिक जागरण', 1948 में आगरा से निकला 'अमर उजाला', 1947 में इन्दौर से शुरु हुआ 'नई दुनिया', 1950 में मुम्बई से प्रकाशित हुआ 'नवभारत टाइम्स', 1958 में भोपाल से 'दैनिक भास्कर', 1983 में दिल्ली से 'जनसत्ता' और 1988 में दिल्ली से निकला 'राष्ट्रीय सहारा' शामिल है। नई दुनिया ने सबसे पहले वेबसाइट पत्रकारिता की शुरुआत की। इसके बाद 'पंजाब केसरी', दैनिक भास्कर आदि ने ईपेपर शुरू किए। इस तरह हिंदी पत्रकारिता अपने संघर्षों के बलबूते और अंग्रेजी के समक्ष सकारात्मक प्रतिस्पर्धा की भावना के साथ आगे बढ़ी।

निजी पूंजी के प्रवेश से मीडिया एक उद्योग के रूप में उभरा



शिवांस सक्सेना
बीएससी, माइक्रोबॉयलोजी
चतुर्थ वर्ष

भारत के इतिहास में बाहरी आक्रमणों और शासन का एक बड़ा दौर रहा। आजादी के लिए लड़ा गया स्वाधीनता संग्राम का आधुनिक युग भी इसी इतिहास में वर्णित है। हिंदी पत्रकारिता का इतिहास भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से गहराई से जुड़ा है। स्वतंत्रता पूर्व काल में पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना का निर्माण, जनजागरण तथा विदेशी शासन के विरुद्ध जनमत तैयार करना था। वर्ष 1947 में देश को स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद हिंदी पत्रकारिता के समक्ष नई परिस्थितियां और जिम्मेदारियां उत्पन्न हुईं। अब इसका उद्देश्य राजनीतिक और स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था। इसका उद्देश्य लोकतंत्र की रक्षा, सामाजिक न्याय की स्थापना और राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भागीदारी निभाना बन गया। इस प्रकार 1947 से 2000 तक का समय हिंदी पत्रकारिता के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया, जिसमें प्रेस को समाज का सजग प्रहरी माना गया। हिंदी पत्रकारिता ने इस भूमिका को गंभीरता से स्वीकार किया। पत्रकारों ने जनता और सरकार के बीच सेतु का कार्य किया तथा जनसमस्याओं को प्रमुखता से सामने लेकर लाए। इस काल में समाचार पत्रों ने सूचनाएं देने के साथ नागरिकों को उनके अधिकार और कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया। लोकतांत्रिक मूल्यों, संविधान, सामाजिक समानता और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में पत्रकारिता की भूमिका उल्लेखनीय रही।

स्वतंत्रता के बाद का प्रारंभिक काल देश के पुनर्निर्माण का समय था। विभाजन के कारण उत्पन्न शरणार्थी समस्या, आर्थिक संकट, खाद्य की कमी और प्रशासनिक चुनौतियां प्रमुख विषय बने। हिंदी समाचार पत्रों ने इन समस्याओं को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया। इस दौर में संविधान निर्माण, पंचवर्षीय योजनाओं, औद्योगीकरण और ग्रामीण विकास पर व्यापक लेखन हुआ। पत्रकारिता में नैतिकता, निष्पक्षता और सामाजिक उत्तरदायित्व को विशेष महत्व दिया गया। अधिकांश पत्रों का मूल विचार प्रधान और साहित्यिक रहा, जिससे उनमें गंभीरता और वैचारिक गहराई बनी रही। 1960 के दशक से हिंदी पत्रकारिता में धीरे-धीरे विस्तार और परिपक्वता दिखाई देने लगी। पाठकों की संख्या बढ़ने से समाचार पत्रों का प्रसार दूरदराज के क्षेत्रों तक फैला, जो व्यावसायिक रूप से भी बढ़ा। इस काल में देश ने चीन और पाकिस्तान से युद्धों का सामना किया, जिनका व्यापक प्रभाव पत्रकारिता पर भी पड़ा। साथ ही गरीबी, बेरोजगारी और खाद्य संकट जैसे मुद्दों पर खबरें सामने आईं। संपादकीय पृष्ठों पर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर विमर्श होने लगा। पत्रकारिता ने समाज के बौद्धिक नेतृत्व की भूमिका निभाई और जनमत निर्माण में महती योगदान दिया।

इसके बाद आया आपातकाल का समय। 1975 से 1977 तक का समय हिंदी पत्रकारिता के इतिहास का निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ। इस अवधि में प्रेस पर रोक टोक लगाई गई। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर गंभीर प्रतिबंध लगाए गए। अनेक समाचार पत्रों को दबाव में काम करना पड़ा। कई पत्रकारों को जेल भेजा गया। इसके बावजूद कुछ साहसी पत्रकारों ने संकेतों, व्यंग्य और प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से सत्ता का विरोध किया। आपातकाल के अनुभव ने पत्रकारिता को बताया कि स्वतंत्र प्रेस लोकतंत्र की आत्मा है। इसके बाद पत्रकार और अधिक सजग व जागरूक बने। आपातकाल के बाद का समय हिंदी पत्रकारिता के पुनर्जागरण का काल माना जाता है। इस दौर में पत्रकारों ने निर्भीक होकर सत्ता से प्रश्न पूछने की परंपरा को मजबूत किया। भ्रष्टाचार, प्रशासनिक कमी, गरीबी, महिला उत्पीड़न और सामाजिक असमानता जैसे विषयों पर खुलकर लेखन हुआ। खोजी पत्रकारिता के विकास के माध्यम से अनेक घोटाले और अनियमितताएं उजागर की गईं। इसी काल में क्षेत्रीय और स्थानीय



पत्रकारिता का तेजी से विस्तार हुआ, जिससे छोटे शहरों और कस्बों की समस्याएं राष्ट्रीय स्तर पर सामने आने लगीं।

1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण के बाद हिंदी पत्रकारिता में व्यापक परिवर्तन देखने को मिला। निजी पूंजी के प्रवेश से मीडिया, उद्योग के रूप में विकसित होने लगा। तकनीकी दृष्टि से भी प्रगति हुई। कंप्यूटर, डिजिटल प्रिंटिंग और रंगीन छपाई के प्रयोग से समाचार पत्र अधिक आधुनिक और आकर्षक बने। पृष्ठ सज्जा, चित्रों और ग्राफिक्स के माध्यम से समाचार प्रस्तुति में नया रूप आया। साथ ही राजनीति और समाज के अलावा व्यापार, शेयर बाजार, मनोरंजन, खेल और जीवनशैली जैसे विषयों को भी व्यापक स्थान मिलने लगा। इस काल में समाचार पत्रों के बीच प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी। प्रसार संख्या बढ़ाने की होड़ में कई बार सनसनीखेज समाचार, बड़े शीर्षक और आकर्षक प्रस्तुति पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। इससे पाठक संख्या में वृद्धि तो हुई, लेकिन पत्रकारिता की गंभीरता और विश्वसनीयता भी प्रभावित हुई। विज्ञापनों पर बढ़ती निर्भरता के कारण संपादकीय स्वतंत्रता पर दबाव महसूस किया जाने लगा।

1947 से 2000 के बीच हिंदी पत्रकारिता ने धीरे-धीरे वंचित और उपेक्षित वर्गों की समस्याओं को भी प्रमुखता से उठाना शुरू किया। महिलाओं से जुड़े दहेज, घरेलू हिंसा, शिक्षा और रोजगार जैसे मुद्दों पर लेखन हुआ। दलित, पिछड़े और आदिवासी समाज के अधिकारों, सामाजिक भेदभाव और राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर चर्चा होने लगी। इससे पत्रकारिता अधिक संवेदनशील और समावेशी बनी। इस कालखंड में हिंदी पत्रकारिता और साहित्य का संबंध भी सशक्त रहा। अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकार पत्रकारिता से जुड़े रहे, जिन्होंने समाचार पत्रों को बौद्धिक और साहित्यिक गरिमा प्रदान की। निबंध, व्यंग्य, यात्रा-वृत्तांत और संस्मरण जैसी विधाओं ने पाठकों की वैचारिक चेतना को समृद्ध किया। इससे पत्रकारिता केवल सूचना का माध्यम न रहकर सांस्कृतिक और वैचारिक मंच भी बनी। इस दौर में हिंदी पत्रकारिता ने अनेक उपलब्धियां प्राप्त कीं, फिर भी उसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। व्यावसायिक दबाव, राजनीतिक हस्तक्षेप, विज्ञापन पर निर्भरता और ग्रामीण पत्रकारों की उपेक्षा जैसी समस्याएं बनी रहीं। कई बार यह कारक पत्रकारिता की निष्पक्षता और सामाजिक प्रतिबद्धता को प्रभावित करते रहे। समग्र रूप से देखा जाए तो 1947 से 2000 तक का काल हिंदी पत्रकारिता के लिए विकास, परिवर्तन और प्रयोग का युग रहा। इस अवधि में पत्रकारिता ने राष्ट्रीय चेतना को सुदृढ़ किया। लोकतंत्र को मजबूत बनाया। सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। तकनीकी और व्यावसायिक दृष्टि से प्रगति की। व्यवसायीकरण के कारण कुछ नकारात्मक प्रभाव पड़े, फिर भी पत्रकारिता ने अपनी मूल सामाजिक भूमिका को काफी हद तक बनाए रखा। इस तरह स्वतंत्रता के बाद से 20वीं सदी के अंतिम दशक तक हिंदी पत्रकारिता ने एक प्रेरणादायक और सशक्त यात्रा तय की है। इस यात्रा में उसने साहस, जिम्मेदारी, नवाचार और सामाजिक संवेदनशीलता का संतुलन बनाए रखने का काम किया। आज की डिजिटल पत्रकारिता की नींव इसी कालखंड में पड़ी। यह दौर हिंदी पत्रकारिता का आधार स्तंभ और मार्गदर्शक काल माना जाता है, जिसने भविष्य की दिशा को निर्धारित किया।

सामाजिक जागरुकता



खुशी प्रजापति
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
द्वितीय वर्ष

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। यहां की व्यवस्था विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और पत्रकारिता जैसे चार मुख्य स्तंभों पर टिकी है। प्रत्येक स्तंभ की जनता के प्रति अपनी एक विशिष्ट भूमिका है। ऐसे में एक पत्रकार जनता को सही दिशा दिखाने, सटीक सूचना देने, उन्हें जागरुक और शिक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। सामाजिक परिवर्तन की सशक्त परिभाषा देता है। पुराने समय से लोग कुछ नया जानने और नई सूचना प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते हैं। पत्रकारिता उनकी इस उत्सुकता को पूरा करने का काम करती है।

शुरुआती दौर में जन साधारण तक सूचनाएं पहुंचाने के लिए पत्थरों, शिलाओं और धातु की पट्टियों पर संदेश उत्कीर्ण किए जाते थे। पत्रकारिता की शुरुआत यहीं से मानी जाती है। एक्टा ड्यूरना का मतलब है दैनिक कार्य या दिन की घटना। यह पहला ऐसा समाचार पत्र माना जाता है, जिसे पूर्व रोम में जूलियस सीजर ने प्रकाशित किया। आगे चलकर 1605 में आधुनिक मुद्रित पत्रकारिता का उदय हुआ। जोहान गुटेनबर्ग की ओर से किए गए प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने इस क्षेत्र में क्रांतिकारी लहर पैदा कर दी। जिस तकनीक ने रिलेशन समाचार पत्र के प्रकाशन का मार्ग प्रशस्त किया, उसी का उपयोग कर जेम्स ऑगस्टस हिकी ने भारत में 'बंगाल गजट' की शुरुआत की। इस अंग्रेजी पत्र का मुख्य उद्देश्य जनमानस को जागरुक करना और ईस्ट इंडिया कंपनी के भ्रष्टाचार व प्रशासनिक खामियों को उजागर करना था, जिसे कुछ ही समय बाद सरकार के आदेश से बंद कर दिया गया। जनता तक सटीक सूचना पहुंचाने व सत्य से रूबरू कराने के साथ ही स्वतंत्रता प्राप्ति की चिंगारी ने देशवासियों के दिलों में देश भक्ति की अलख जगा दी। इसी राष्ट्रीय चेतना के परिणामस्वरूप भारत में समाचार पत्रों के प्रकाशन का सिलसिला शुरू हुआ। 30 मई 1826 कलकत्ता में युगल किशोर ने 'उदन्त मार्तण्ड' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया। इसी के साथ हिंदी पत्रकारिता की नींव पड़ी। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ब्रिटिश नीतियों का विरोध और आलोचना करने के उद्देश्य से बाल गंगाधर तिलक ने 'केसरी' समाचार पत्र का संपादन शुरू किया। इसके प्रथम संपादक होने का गौरव गोपाल गणेश अगरकर को प्राप्त हुआ। महात्मा गांधी द्वारा संचालित 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' जैसे पत्रों का मुख्य उद्देश्य अहिंसक विचारधारा और स्वराज के संकल्प को जन-जन तक पहुंचाना था। इन पत्रों ने छुआछूत जैसी कुरीतियों, सामाजिक भेदभाव और आर्थिक समस्याओं पर प्रहार कर समाज को दिशा दी। पौराणिक और सांस्कृतिक कथाओं के अनुसार देव ऋषि नारद मुनि को दुनिया का पहला पत्रकार कहा जाता है। वह तीनों लोकों में सूचनाओं का आदान प्रदान करते थे। पत्रकारिता का मूल उद्देश्य समाज में निरंतर जागरुकता फैलाना और जन साधारण को शिक्षित करना रहा है। विशेष रूप से इसने सती प्रथा और बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन के लिए काम किया। जातिवाद और लैंगिक भेदभाव को मिटाने के लिए सशक्त माध्यम के रूप में कार्य किया। भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, गरीबी, सामाजिक असमानता और पर्यावरण संरक्षण जैसे विषय पत्रकारिता में अहम मुद्दे हैं।

आज के आधुनिक युग में पत्रकारिता का पूरा स्वरूप बदल गया है। पत्थरों से लेकर इंटरनेट के जमाने तक पत्रकारिता का

सफर सुहाना रहा है। जहां पहले व्यक्ति को खबर जानने के लिए चौराहों पर जाना होता था। फिर अखबारों को पढ़ना होता था। वहीं आज लोग कहीं, कभी, किसी भी समय पर खबर जान सकते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफार्म- वेबसाइट, मोबाइल ऐप, यूट्यूब चैनल-के माध्यम से पत्रकारिता और व्यापक रूप में सामने आई है। अब घटना घटते ही जनता के पास चंद मिनट में खबर पहुंच जाती है। इंटरनेट ने भारत सहित वैश्विक सूचनाओं को भी सभी के लिए सुलभ बना दिया है। अब दुनिया के किसी भी कोने की खबरें मात्र एक क्लिक पर आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं। ऑनलाइन माध्यम के सहारे हिंदी पत्रकारिता तेजी से फैल रही है। दलितों, आदिवासियों, महिलाओं और युवकों के मुद्दों को महत्व दे रही है।

डिजिटल दौर में पत्रकारिता का स्वरूप तेजी से ऑनलाइन और तकनीक आधारित होता जा रहा है। इस बदलाव के साथ पत्रकारिता जगत को कई नई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है। अधिकांश टीवी चैनल टीआरपी की रेस में आगे निकलने और दर्शकों का ध्यान खींचने के लिए जल्दबाजी में सूचनाएं प्रसारित करते हैं। इस चक्कर में वे अक्सर जनता तक भ्रामक, झूठी या आधी अधूरी खबरें पहुंचा रहे हैं, जो समाज के लिए घातक है। इस कारण लोग महज एक पक्ष के बारे में जान पाते है। आजकल फेक न्यूज तेजी से बढ़ रही है। इससे लोग गुमराह भी होते हैं। राजनीतिक दबाव, व्यावसायिक हित, विज्ञापन का प्रभाव सहित अनेक चुनौतियां पत्रकारिता में देखने को मिलती हैं।

पत्रकारिता लोगों को जागरूक करने के साथ उनका सच से सामना कराती है। जनता की आवाज को सत्ता तक पहुंचाने का कार्य करती है। हिंदी पत्रकारिता ने लोगों तक सूचना पहुंचाने के साथ सामाजिक चेतना जगाने व परिवर्तन की लहर पैदा करने में भी अपनी भूमिका अदा की है। इसका इतिहास केवल समाचारों का इतिहास नहीं है। स्वतंत्रता के प्रति लोगों को जागरूक करना व समाज की कुरीतियों पर प्रहार करना रहा है। आज भले पत्रकारिता अपने आधुनिक स्वरूप में है तब भी वह लोगों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभा रही है। पत्रकारिता के अभाव में समाज में सार्थक परिवर्तन लाना लगभग असंभव है, क्योंकि वास्तविक बदलाव तभी आता है, जब जनमानस में जागरूकता और समझ पैदा हो।



हिंदी पत्रकारिता की विज्ञापनी यात्रा : मिशन, बाजार और चुनौतियां



रिशुराज श्रीवास्तव
बीए (ऑनर्स) राजनीति विज्ञान
द्वितीय वर्ष

पंडित युगल किशोर शुक्ल के मन में 'उदन्त मार्तण्ड' के जरिए हिंदी भाषियों तक अपनी आवाज पहुंचाने की धुन सवार थी। वैसे इस संकल्प के पीछे एक यक्ष प्रश्न खड़ा था कि यह सब चलेगा कैसे और इसका खर्च कौन उठाएगा? आज 2026 में खड़े होकर जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो हिंदी पत्रकारिता और विज्ञापन का रिश्ता किसी पुरानी शादी जैसा प्रतीत होता है। इस रिश्ते में कभी अगाध प्रेम रहा तो कभी तीखे झगड़े, लेकिन सच यह है कि दोनों का एक-दूसरे के बिना कभी गुजारा संभव नहीं हुआ। हां, इस सफर में दोनों ने एक-दूसरे को बदलकर रख दिया।

प्रथम चरण : मिशन और मुनाफे के बीच (1826 से 1900)

शुरुआती दौर में हिंदी पत्रकारिता का कोई बड़ा बिजनेस नहीं था। यह जनजागरण का पवित्र मिशन था। इसका मुख्य उद्देश्य समाज में सुधार लाना और लोगों को जागरूक करना था, न केवल पैसा कमाना। 'उदन्त मार्तण्ड' खुद पैसे की तंगी और डाक खर्च की मार से डेढ़ साल में बंद हो गया। उस समय के विज्ञापन आज की तरह चकाचौंध और चमक-दमक वाले नहीं होते थे। वह सीधी सूचनाओं तक सीमित थे। मसलन-नई किताब छपी है या यह दवा लीजिए। रेल की समयसारिणी तक को विज्ञापन मान लिया जाता था। भारतेंदु हरिश्चंद्र के युग में विज्ञापनों में थोड़ी जान आई। भाषा रोचक हुई, लेकिन संपादक और विज्ञापनदाता के बीच एक अदृश्य दीवार थी-नैतिकता की। पत्र समाज के हथियार थे, बाजार के ढोल नहीं। उन विज्ञापनों में एक तरह का भोलापन था, जैसे कोई पुराना दोस्त सलाह दे रहा हो। हास्यास्पद बात यह कि संपादक खुद पाठकों से गुहार लगाते थे-चंदा समय पर दीजिए, वरना यह पत्र कैसे चलेगा? आज के बारे में सोचिए कि अगर सोशल मीडिया पर कोई ऐसा पोस्ट करे तो वह ट्रोल हो जाएगा।

द्वितीय चरण : स्वदेशी की गूंज और राष्ट्रवाद (1900 से 1947)

बीसवीं सदी की शुरुआत में जिस तरह से स्वतंत्रता संग्राम ने रफ्तार पकड़ी, विज्ञापनों का रंग भी पूरी तरह बदल गया। अब विज्ञापन महज सामान बेचने के नहीं, राष्ट्रवाद के हथियार बन गए। जहां अंग्रेजी पत्रों में ब्रिटिश कपड़ों और विदेशी शराब के विज्ञापन प्रमुखता से छपते थे, वहीं गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' और माखनलाल चतुर्वेदी के 'कर्मवीर' जैसे पत्रों में स्वदेशी उत्पादों को स्थान मिलता था। इनमें खादी, स्वदेशी दंत मंजन और भारतीय बीमा जैसे उत्पादों का प्रचार किया जाता था, जो पूरी तरह देशप्रेम की चाशनी में लिपटे होते थे। महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' में विज्ञापनों पर सख्ती बरती। उनका कहना था विज्ञापन लोगों को अनावश्यक चीजें खरीदने पर मजबूर करते हैं। मुख्य धारा का हिंदी मीडिया जानता था कि विज्ञापनों के बिना प्रेस का अस्तित्व संभव नहीं है, फिर भी उनमें नैतिकता का गहरा बंधन था। उस समय अश्लील या झूठे विज्ञापनों के लिए स्थान नहीं था। भले अखबार को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़े।

तृतीय चरण : अभाव की अर्थव्यवस्था और सरकारी बैसाखी (1947 से 1990)

आजादी के बाद भारत एक नई जद्दोजहद में फंसा था। देश बन रहा था, लेकिन अर्थव्यवस्था लाइसेंस राज की जंजीरों में जकड़ी थी। जब बाजार में सिर्फ दो साबुन कंपनियां हों। स्कूटर के लिए दस साल की वेटिंग लिस्ट हो तो विज्ञापन किस काम के होंगे। हिंदी पत्रकारिता के लिए यह एक तरह के ठहराव का दौर था। यह ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई पुरानी फिल्म हो, जो बार-बार रुक-रुक कर चल रही हो। उस समय विज्ञापनों के नाम पर मुख्य रूप से क्लासीफाइड विज्ञापन ही दिखाई देते थे, जिनमें शादी, नौकरी और शोक संदेशों की प्रधानता रहती थी, परंतु पत्रों की आय का सबसे बड़ा स्रोत डीएवीपी यानी सरकारी विज्ञापन हुआ करते थे। उस दौर में सरकार समाचार पत्रों की सबसे बड़ी स्पॉन्सर हुआ करती थी। हिंदी पत्र कभी आजादी की लड़ाई के दौरान अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आग उगलते थे, अब सरकारी विज्ञापनों के लिए कतारों में खड़े नजर आने लगे। उस समय

विज्ञापनों की भाषा शुष्क थी और रंगीन विज्ञापनों की कल्पना करना लग्जरी माना जाता था। विडंबना यह थी कि उस दौर के विज्ञापन इतने उबाऊ होते थे कि पाठक उन्हें देखकर रोमांचित नहीं होते थे। उनमें नीरस सूचनाएं अधिक होती थीं।

चतुर्थ चरण : उदारीकरण और बाजार का गोदनामा (1991 से 2010)

भारत के आधुनिक इतिहास में वर्ष 1991 एक महत्वपूर्ण बिन्दु साबित हुआ। इसमें देश की अर्थव्यवस्था के द्वार खुले, हिंदी पत्रों के दरवाजे भी बाजार और विज्ञापनों के लिए खुल गए। उपभोक्तावाद ने मध्यम वर्ग के दरवाजे खटखटाए। रंगीन टीवी आया तो पत्रों को भी रंगीन होना पड़ा। अब पाठक बुद्धिजीवी के साथ उपभोक्ता था। पन्ने बढ़े। सप्लीमेंट्स आए। विज्ञापनों ने खबरों को घेर लिया। कभी-कभी पहले पेज पर खबर ढूंढनी पड़ती है। विज्ञापन चीखते रहते हैं। संपादक की कुर्सी कमजोर पड़ी। मार्केटिंग मैनेजर राज करने लगे। न्यूज यू कैन यूज का नारा गूंजा। उस दौर में दैनिक जागरण जैसे पत्रों ने हिंदी बेल्ट के विशाल बाजार की नब्ज को पहचाना, जिसके परिणाम स्वरूप पत्रों पर विज्ञापनों की बारिश होने लगी। किंतु इस आर्थिक समृद्धि ने एक गंभीर प्रश्न भी खड़ा कर दिया कि क्या यह हिंदी पत्रकारिता की वास्तविक जीत थी या बाजार का बढ़ता वर्चस्व?



पंचम चरण : नए पत्र और संपादक का विस्थापन (2000 से 2010 के बाद)

2000 के दशक में हिंदी पत्रकारिता में नया बदलाव आया-संपादक से मुक्ति, मूल्यों से आजाद। यह माना गया कि पाठक नागरिक नहीं, उपभोक्ता हैं। 'सत्य' की जगह नैरेटिव ने ले ली। खबरों से ज्यादा दिखावे की फिक्र होने लगी। विज्ञापनों के दबाव में संपादकीय पन्ने सिकुड़ गए। लाइफ स्टाइल ने विचारों को निगल लिया। जिस तरह से पेड न्यूज का चलन बढ़ा, समाचार पत्रों की साख पर सीधा प्रहार हुआ। इस प्रवृत्ति ने हिंदी पत्रकारिता की सबसे बड़ी पूंजी विश्वसनीयता को चोट पहुंचाई। धीरे-धीरे पाठकों ने इस नए स्वरूप के साथ अनुकूलन कर लिया। अब पहले पन्ने पर छपा फुल पेज विज्ञापन उन्हें बिल्कुल नहीं चौंकाता। विडंबना यह है कि यह नया पत्र इतना अधिक प्रजेंटेबल हो गया है कि कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है मानो खबरें मुख्य हिस्सा न होकर केवल विज्ञापनों के बीच के खाली स्थान को भरने वाली फिलर रह गई हैं। वर्तमान परिदृश्य में डिजिटल सुनामी और एल्गोरिद्म का बोलबाला है। 2026 तक आते-आते पत्रकारिता पूरी तरह कागज से सिमट कर डिजिटल स्क्रीन पर आ चुकी है।

मोबाइल ने पढ़ने का समय चुरा लिया। आज के दौर में विज्ञापन केवल साधारण बैनर नहीं रहे, वह स्वयं कंटेंट का रूप ले चुके हैं। नैरेटिव ऐड्स और स्पॉन्सर्ड पोस्ट्स की बढ़ती पैठ ने खबर और प्रचार के बीच की धुंधली रेखा को मिटा दिया है। आज एआई तय करता है कि आपकी स्क्रीन पर क्या दिखेगा। यह किसी ऐसे जादुई जिन्न की तरह व्यवहार करता है जो आपकी अपनी पसंद से भी कहीं ज्यादा आपके बारे में जानता है। आज के दौर में क्लिकबेट की संस्कृति ने पत्रकारिता की गंभीरता को चोट पहुंचाई है। अब खबरों का मूल्य उनकी गहराई से नहीं क्लिक्स से आंका जाता है। अधिक व्यूज पाने की इस अंधी दौड़ में सनसनी फैलाना मुख्य उद्देश्य रह गया है।

इन चुनौतियों के बावजूद डिजिटल क्रांति का एक सकारात्मक पक्ष यह है कि इसने हिंदी को सही मायनों में ग्लोबल बना दिया है। आज हिंदी पत्रकारिता की पहुंच स्थानीय स्तर तक सीमित नहीं रही, बल्कि डिजिटल माध्यमों ने इसके राजस्व और प्रभाव दोनों में बड़ी वृद्धि की है। स्थानीय ऐड्स ने छोटे शहरों की पत्रकारिता बचाई। अंतिम बात यह कि हिंदी पत्रकारिता की दो सदी की यात्रा बताती है कि तकनीक बदली, माध्यम बदला, लेकिन सवाल वही कि क्या पत्रकारिता बचेगी? पाठकों के सहयोग से मूल्य आधारित पत्रकारिता लौटानी होगी। बाजार और दायित्व के बीच संतुलन ही अगले 100 वर्ष तय करेगा।

समय के साथ संपादक की बदलती रही भूमिका



श्रुति मिश्रा
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
चतुर्थ वर्ष

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास दो शताब्दी की जीवंत यात्रा है। एक ऐसी यात्रा जिसमें भाषा, समाज, राजनीति और तकनीक के निरंतर परिवर्तनों के बीच पत्रकारिता ने स्वयं को पुनः परिभाषित किया है। 1826 में 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन से आरंभ हुई यह धारा आज डिजिटल प्लेटफार्मों, सोशल मीडिया और आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस के युग तक पहुंच चुकी है। इस यात्रा में यदि कोई केंद्रीय और निरंतर सक्रिय व्यक्तित्व रहा है तो वह है संपादक।

शुरुआती दौर में संपादक समाचारों के चयनकर्ता के साथ विचारों और भाषा का संरक्षक, समाज का मार्गदर्शक और अनेक बार सत्ता से टकराने वाला बौद्धिक योद्धा था। उस समय संपादक स्वयं ही प्रकाशक, लेखक, मुद्रक और वितरक होता था। समय के साथ उसकी भूमिका संस्थागत, पेशेवर और तकनीकी रूप से परिवर्तित होती गई। आज के समय में मीडिया पर बाजार, राजनीति और डिजिटल एल्गोरिद्म का प्रभाव बढ़ रहा है। वर्तमान में संपादक की भूमिका का अध्ययन हमें यह समझाने में मदद करता है कि वह कैसे विचार नायक से प्रबंधन निर्देशित प्रबंधक और फिर डिजिटल कंटेंट क्यूरेटर में रूपांतरित हुआ। इस बदलती भूमिका का विश्लेषण पत्रकारिता के इतिहास को समझने के लिए आवश्यक है। साथ ही यह लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति का आंकलन करने के लिए भी प्रासंगिक है। हिंदी पत्रकारिता के प्रारंभिक चरण में संपादक एक मिशनरी व्यक्तित्व था। 19वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में हिंदी भाषा स्वयं मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रही थी। ऐसे में संपादक केवल समाचार प्रस्तुत नहीं कर रहे थे बल्कि भाषा को भी आकार रहे थे। 1826 में पंडित युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' समाचार पत्र की शुरुआत कर हिंदी पत्रकारिता की नींव रखी।

इस काल के संपादकों ने हिंदी गद्य को विकसित करने, समाज सुधार के विचारों को प्रसारित करने और जनचेतना को जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई। वह समाज में व्याप्त कुरीतियों–सती प्रथा, बाल विवाह, जातिगत भेदभाव–के विरुद्ध लेखन करते थे। हिंदी पत्रकारिता के प्रारंभिक संपादक साहित्यकार होते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी नाटक और गद्य को समृद्ध किया। संपादकीय हस्तक्षेप के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को स्वर दिया। गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे संपादकों ने पत्रकारिता को जन आंदोलन का रूप दिया। उनका संपादन समाचार प्रस्तुत करने के साथ जनचेतना का निर्माण करना था। संपादक उस समय जोखिम उठाने को तैयार रहते थे। इस काल में संपादक की भूमिका एक्टिविस्ट और बौद्धिक नेतृत्वकर्ता की थी। उनकी कलम में सुधारवादी दृष्टि और राष्ट्रवादी चेतना का संगम दिखाई देता है। आर्थिक संसाधनों का अभाव, औपनिवेशिक दमन और सीमित पाठक वर्ग जैसी चुनौतियों के बावजूद संपादक अपने दायित्व से नहीं हटे। स्वतंत्रता आंदोलन के समय संपादक की भूमिका और अधिक संघर्षपूर्ण हो गई। इस काल में अनेक संपादक स्वयं स्वतंत्रता सेनानी थे। बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने पत्रकारिता को जनजागरण का माध्यम बनाया। हिंदी के संपादक औपनिवेशिक सरकार की कठोर प्रेस नीतियों का सामना कर रहे थे। सरकार के विरुद्ध बातें करने पर प्रेस और मालिकों को कार्रवाई का सामना करना पड़ता था। अनेक पत्रों पर जुर्माना लगा। संपादकों को जेल भेजा गया। प्रेस जब्त कर लिए गए। फिर भी वह औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध जनमत तैयार करने से पीछे नहीं हटे। इस दौर के संपादक सूचना देने के साथ राष्ट्रवादी विचारधारा के वाहक थे। गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे संपादकों ने सांप्रदायिक सद्भाव और सामाजिक न्याय के पक्ष में निर्भीक लेखन किया। संपादकीय स्तंभ एक वैचारिक मंच बन गया। जहां से अंग्रेजी शासन की नीतियों की आलोचना और स्वराज की वकालत की जाती थी। यह वह समय था जब संपादक का व्यक्तित्व पत्र से बड़ा होता था। पाठक पत्र को उसके संपादक

की वैचारिक प्रतिबद्धता के आधार पर पहचानते थे। संपादकीय लेख विचार के साथ-साथ आंदोलन का घोषणापत्र होते थे। स्वतंत्रता के बाद भारतीय लोकतंत्र की स्थापना के साथ पत्रकारिता के चरित्र में भी बदलाव आया। अब पत्रकारिता का प्राथमिक लक्ष्य लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूती देना और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में योगदान देना था। इस काल में पत्रकारिता का संस्थानीकरण हुआ। बड़े मीडिया समूहों का उदय हुआ। संपादकीय संरचनाएं औपचारिक हुईं और पत्रकारिता एक पेशेवर क्षेत्र के रूप में स्थापित हुई। संपादक अब व्यक्तिगत मिशनरी से संस्थागत नेतृत्वकर्ता बन गया।

1950 से 1990 के बीच हिंदी पत्रकारिता में संपादकीय नेतृत्व का विशेष महत्व रहा। संपादक समाचार चयन, भाषा शैली और वैचारिक दिशा निर्धारित करते थे। 1975-77 में आपातकाल के दौरान संपादकों की भूमिका परीक्षा वाली रही। कुछ ने सत्ता के दबाव के सामने झुकाव दिखाया तो कुछ ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जोखिम उठाया। संपादक का दायित्व था कि वह विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका पर निगरानी रखे। खोजी पत्रकारिता और संपादकीय स्वतंत्रता को प्रतिष्ठा मिली। इसी दौर में प्रबंधन और संपादक के बीच शक्ति संतुलन का प्रश्न उभरने लगा। विज्ञापन राजस्व पर निर्भरता बढ़ी और मीडिया उद्योग के रूप में विकसित होने लगा। संपादक का नैतिक और वैचारिक कद अभी भी केंद्रीय था। 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद मीडिया परिदृश्य में व्यापक परिवर्तन हुए। निजी टेलीविजन चैनलों का आगमन, प्रतिस्पर्धा में वृद्धि और विज्ञापन आधारित मॉडल की सुदृढ़ता ने पत्रकारिता को बाजार उन्मुख बना दिया। इस दौर में संपादक की पारंपरिक भूमिका में बड़ा बदलाव आया।



अब संपादक की जिम्मेदारी केवल वैचारिक नेतृत्व प्रदान करने तक ही सीमित नहीं रही। उसे अब टीआरपी, सर्कुलेशन और ब्रांड पोजीशनिंग जैसे व्यावसायिक पहलुओं पर भी विशेष ध्यान देना पड़ा। संपादकीय स्वतंत्रता और प्रबंधन के हितों के बीच तनाव बढ़ा। कई संस्थानों में संपादक की जगह एडिटर इन चीफ या मैनेजिंग एडिटर जैसे पदनाम आए, जो व्यावसायिक दृष्टि से अधिक उत्तरदायी थे। कॉरपोरेट स्वामित्व ने समाचारों की प्राथमिकताओं को प्रभावित किया। राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों के साथ मीडिया समूहों के संबंधों ने संपादक की स्वायत्तता को सीमित किया।

पेड न्यूज और एडवरटोरियल जैसे नए रूप सामने आए, जिससे संपादकीय नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लगे। यहां संपादक एक संतुलनकारी व्यक्तित्व बन गया। उसे बाजार, प्रबंधन और पत्रकारिता के मूल्यों के बीच समन्वय स्थापित करना था। 21वीं सदी में इंटरनेट, सोशल मीडिया और मोबाइल तकनीक ने पत्रकारिता की संरचना ही बदल दी। अब समाचार केवल प्रिंट या टीवी तक सीमित नहीं हैं। वे वेबसाइट, ब्लॉग, यूट्यूब चैनल और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर तुरंत उपलब्ध हो रहे हैं। इस परिवेश में संपादक की पारंपरिक गेटकीपर की भूमिका कमजोर हुई। पहले संपादक तय करता था कि कौन-सी सूचना प्रकाशित होगी। अब कोई भी व्यक्ति सोशल मीडिया पर सामग्री साझा कर सकता है। परिणाम स्वरूप संपादक की भूमिका कंटेंट क्यूरेटर और वेरिफायर की हो गई। फेक न्यूज, दुष्प्रचार और ट्रोल संस्कृति के दौर में संपादक पर तथ्य जांच की अतिरिक्त जिम्मेदारी है। डिजिटल विश्लेषण और एल्गोरिदम आधारित वितरण ने संपादकीय निर्णयों को डाटा आधारित बना दिया है। आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस के बढ़ते प्रयोग ने संपादक की भूमिका को पूरी तरह बदल दिया है। स्वचालित रिपोर्टिंग,

हेडलाइन जनरेशन और कंटेंट क्रिएशन ने संपादक की भूमिका को तकनीकी रूप से अधिक जटिल बना दिया हैं। अब उसे केवल भाषा और विचार का नहीं बल्कि डिजिटल रणनीति, साइबर सुरक्षा और मल्टीमीडिया प्रस्तुति का भी ज्ञान होना चाहिए।

आज का संपादक बहुस्तरीय दबावों के बीच कार्य कर रहा है। राजनीतिक दबाव, आर्थिक निर्भरता, कॉरपोरेट हित और डिजिटल प्लेटफार्मों की प्रतिस्पर्धा, ये सभी उसकी स्वायत्तता को चुनौती देते हैं। आज के समय में मीडिया नैतिकता का प्रश्न पहले से अधिक प्रासंगिक है। क्या संपादक सत्ता से प्रश्न पूछने का साहस बनाए रख पा रहा है? क्या वह समाज में विविध आवाजों को स्थान दे रहा है? क्या वह सनसनी से ऊपर उठकर सार्वजनिक हित को प्राथमिकता दे रहा है? भविष्य में संपादक की भूमिका और भी जटिल हो सकती है। स्वतंत्र डिजिटल प्लेटफार्मों और वैकल्पिक मीडिया के उदय ने संपादकीय स्वतंत्रता के नए अवसर भी खोले हैं।

200 वर्षों की हिंदी पत्रकारिता का इतिहास संपादक की बदलती भूमिका को भी रेखांकित करता है। प्रारंभिक दौर में संपादक की भूमिका भाषा निर्माता और समाज सुधारक की थी। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान वह एक राष्ट्रवादी योद्धा के रूप में उभरकर सामने आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उसने लोकतांत्रिक संस्थाओं के सजग प्रहरी की जिम्मेदारी निभाई। उदारीकरण के बाद की चुनौतियों के बीच वह बाजार



और प्रबंधन के बीच संतुलन साधाने वाला कुशल प्रबंधक बना। डिजिटल युग में उसकी भूमिका सूचना सत्यापन और कंटेंट प्रबंधन के विशेषज्ञ की भी है। यह परिवर्तन केवल पदनाम का नहीं है। दृष्टिकोण और दायित्व का भी है। आज जब सूचना की बाढ़ और भ्रम की राजनीति का दौर है तब संपादक की भूमिका पहले से अधिक अहम हो गई है। भविष्य में वही संपादक सफल होगा, जो तकनीकी दक्षता, नैतिक प्रतिबद्धता और वैचारिक स्वतंत्रता के बीच सटीक संतुलन स्थापित कर सकेगा। हिंदी पत्रकारिता के 200 वर्षों की यह यात्रा हमें सिखाती है कि संपादक केवल समाचारों का संरक्षक नहीं बल्कि लोकतांत्रिक चेतना का वाहक है। उसकी भूमिका समय के साथ बदलती रही है। इसके बावजूद सत्य की खोज और समाज के प्रति जवाबदेही ही संपादक का मूल और स्थायी दायित्व बना रहा है। यही निरंतरता हिंदी पत्रकारिता की सबसे बड़ी शक्ति है और यही उसके भविष्य की आशा भी है।



"ब्रिटिश लोग चाहे समझते हों अथवा न समझते हों, परन्तु योग्यता और अयोग्यता की परीक्षा तो समय पर ही होती है। जिस काम पर भारतवासियों को नियुक्त किया गया, उस काम को करने से वे कभी विमुख न हुए। यथासम्भव उन्होंने कार्य को पूरा ही करके छोड़ा। सरकारी सेना विभाग में जो कुशलता देश के वीर सिपाहियों ने दिखलाई थी, क्या वह किसी पर अप्रकट है। अब फिर भारतवासियों में स्वराज्य की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है। ईश्वर यदि इनकी इस जागृति को बनाये रखे और ब्रिटिश सरकार का अनुग्रह और कृपा इन पर बनी रहे, तो एक समय ऐसा आयेगा जब इनको स्वराज्य के अधिकार अवश्य प्राप्त होंगे।"



पं. मदन मोहन मालवीय

(25 दिसम्बर 1861–12 नवम्बर 1946)

अंश, संपादकीय, अभ्युदय

हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार, रामलाल आनंद महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

बेनितो हुआरेज मार्ग, नई दिल्ली–110021